GL H 891.432
PAN
124195
LBSNAA

ा राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~16230~~ 124195
वर्ग संख्या
Class No. GLH 891.432
पुस्तक संख्या
Book No. पंत PAN

ययाति

य या ति

[नाटक]

गोविंदवल्लभ पंत

साहित्य सदन, देहरादून।

प्रकाशक :

साहित्य सदन

देहरादून

प्रथम संस्करण] नवम्बर १९५१

द्वितीय संस्करण] १९६५

मूल्य ३.५०

मुद्रक :

नवरत्न प्रेस,

मेरठ।

दूसरे संस्करण पर

यह नाटक सन् १९५१ में पहली बार छपा था। पुराणों के इस प्रसिद्ध कथानक पर कल्पना के कुछ और भी रंग पहना दिये गये हैं, जो यथार्थता का अवरोध नहीं करते।

पहला संस्करण बहुत पहले ही समाप्त हो गया था। इस दूसरे संस्करण में नाटक के स्थापत्य में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। कथोपकथनों में भी कुछ नहीं, केवल एक पात्र का नाम बदल गया है।

नाटक के अभिनय के सम्बन्ध में एक बात कहनी है। इसमें चार अङ्क हैं। पहला और तीसरा अङ्क, ययाति का प्रासाद है। दूसरा और चौथा, चैत्ररथ वन की एक गुफा। खेलने के सुभीते के लिए ये दोनों सेट एक साथ ही मंच पर बनाये जा सकते हैं। जब जिस अङ्क में अभिनय हो, उसी पर प्रकाश डालकर उसे उभार लिया जाय।

—लेखक

चरित्र : :

१. गुरुदेव
२. ययाति
३. देवयानी } ययाति की रानियां
४. शर्मिष्ठा }
५. विचित्रा— एक शाप-भ्रष्टा अप्सरा
६. मालती— एक किसान-कन्या
७. बड़ा राजकुमार } देवयानी के राजकुमार
८. छोटा राजकुमार }
९. बड़ा बेटा } शर्मिष्ठा के बेटे
१०. मंझला बेटा }
११. पुरु }

[मन्त्री, सेनापति, प्रहरी, कोटपाल, दो विद्रोही, चार अपराधी, गुप्तचर और कुछ सैनिक]

स्थान :

महाराज ययाति का प्रासाद और चैत्ररथ वन

समय : एक वर्ष

पहला अंक

[महाराज ययाति का प्रासाद। दीवारों पर एक बड़ा दर्पण, खड्ग, परशु, ढाल, त्रिशूल-भाले, धनुष-बाण भांति-भांति से सजाये गए हैं। एक ओर महाराज की शय्या, सिंहासन और चौकियां। दासी के वेश में शर्मिष्ठा शय्या बिछाने के बाद एक कपड़े से शस्त्रों की धूल झाड़ती है। मैले-कुचैले वस्त्रों में उसके दो बेटे आते हैं।]

बड़ा बेटा—इतने वर्षों से ऐसे गहन अन्धकार में रख देने से तुमने हमारी प्रगति रोक दी। जब हमें कुछ ज्ञात हुआ, तभी तुमने उस सत्य पर मैले आवरण डाल दिये।

शर्मिष्ठा—किस सत्य पर?

बड़ा बेटा—यही कि राजपुत्री होकर भी तुम दासी हो मां!

शर्मिष्ठा—[अपने अधरों पर हाथ रख कर] चुपो, चुपो, यह क्या कहते हो?

मंझला बेटा—हमारे भीतर से कोई और बोलने लगा, यह रुक नहीं सकता अब।

बड़ा बेटा—हम तुम्हारे तीन पुत्र हैं। सबसे छोटा पुरु—उसकी बात जाने दो, वह तो आधा पागल है। न उसे अपने दैन्य का दुःख है, न अपने गौरव से प्रयोजन। लेकिन हमसे अब यह दासता एक दिन भी सहन नहीं हो सकती।

शर्मिष्ठा—दासता कैसी?

बड़ा बेटा—इतनी खुली हुई और कैसी? तुम महारानी देवयानी की नौकरानी हो और हमें उनके दोनों राजकुमारों के पैर दबाने से

अवकाश नहीं ।

मंझला बेटा—जूठा खाने और उतरन पहनने को !

शर्मिष्ठा—[चिन्ता से माथे पर हाथ रखती है ।]

बड़ा बेटा—सारी प्रजा हमें दासी के बेटे कहकर बदनाम करती है और हम हाथ बांधे नीची दृष्टि कर राजपथ में कीड़ों की भांति रेंगते हुए चले जाते हैं ।

शर्मिष्ठा—भाग्य का लेख !

बड़ा बेटा—दुर्बल और कर्महीन के अक्षरों से किस प्राचीर पर लिखा हुआ है वह ? हम खुरच कर मिटा न सकेंगे उसे तो खोद कर फेंक देंगे, हम युवक हैं अब ।

शर्मिष्ठा—[गौरव से मस्तक ऊंचा करती है ।]

मंझला बेटा—रूप-शील, विद्या और बल किसी बात में हम तीनों भाई उन दोनों राजकुमारों से कम नहीं हैं । फिर क्यों हमारा बनाव-शृंगार, रहन-सहन उनकी कोटि का नहीं ?

शर्मिष्ठा—बेटा, मनुष्य बाहर से नहीं बनता, उसकी परिपूर्णता भीतर से है । यह काया की सजावट और जिह्वा के रस, मनुष्य इन पर खड़ा नहीं है, विचार की ऊंचाई पर उसका स्थैर्य है । विद्या-बल, दया-दान, सत्य और प्रीति ये हैं मानवता के अङ्क—मेरी रोटी और मेरा वस्त्र, यह पशुता की पहिचान है । रह गई यह दासता, सबसे भयानक दासता है इन्द्रियों की, मन जिसकी मुट्ठी में है वह विश्व का विजेता है ।

मंझला बेटा—तुम तो हमें ब्रह्मचारी बना रही हो ।

शर्मिष्ठा—ब्रह्म की पहिचान क्यों नहीं उसकी सन्तान का परम कर्त्तव्य हो ?

बड़ा बेटा—अपने को पहचान कर ही तो ब्रह्म समझ में आवेगा ?

मंझला बेटा—पहले अपने पिता का नाम तो हमें ज्ञात हो, तभी तो जगत-पिता को जान सकेंगे।

शर्मिष्ठा—तुम क्यों नहीं कहते हम शर्मिष्ठा के पुत्र हैं। [एक चौकी पर चढ़ कर दीवार में टंगे एक शस्त्र की धूल झाड़ती है।]

बड़ा बेटा—महारानी देवयानी के वे दोनों राजकुमार जब तर्क या लक्ष्य-वेध में हमें जीत नहीं सकते तो अन्त में इसी बात से जीत जाते हैं। [चुप हो जाता है।]

शर्मिष्ठा—किस बात से ? [चौकी पर खड़ी, हाथ रोक पीठ किए सुनने लगती है।]

बड़ा बेटा—वे हमारे पिता का नाम पूछते हैं। हमारे न बता सकने पर ताली बजा कर कहते हैं—अज्ञात पिता के पुत्रों में माता का कलङ्क छिपा है।

शर्मिष्ठा—[चौंककर चौकी से नीचे गिर पड़ती है।]

[महाराज ययाति को आता देखकर दोनों भाग जाते हैं।]

ययाति—[दौड़ते हुए आकर शर्मिष्ठा को उठाते हैं।] शर्मिष्ठे ! चोट तो नहीं लगी ?

शर्मिष्ठा—[कपड़े झाड़ती हुई] नहीं महाराज। [फिर दूसरी चौकी पर चढ़ कर दूसरे शस्त्र पर की धूल झाड़ने लगती है।]

ययाति—प्रायश्चित हो चुका। यह दासी की वृत्ति अब आवश्यक नहीं रही। तुम राजा की लड़की हो, अपने स्वरूप को पहिचानो सुन्दरी ! [उसका हाथ पकड़कर चौकी से नीचे उतार लेता है।]

शर्मिष्ठा—बाहर के कर्म से नहीं, भीतर की भावना से मनुष्य अपने सुख-दुःख बनाता है महाराज !

ययाति—तुम साक्षात् कर्मयोगिनी हो।

शर्मिष्ठा—[शय्या के नीचे से जूठे बर्त्तन निकालती है]

ययाति—मैं कहता हूँ रहने दो ये जूठे बर्त्तन। तुम्हारी दासता का अन्तिम पात्र धुल चुका। मैं ऊंचे स्वरों में राष्ट्र-भर में घोषणा कर दूंगा शर्मिष्ठा मेरी छोटी रानी है फेंक दो इन्हें, ये लुढ़कते हुए जहां भी चले जांय। इनकी संभाल के लिये कई-कई दासियां हैं मेरे राज-भवन में।]

शर्मिष्ठा—देवयानी यह सुनने पर क्या कहेंगी ? आप अकारण ही क्यों मेरे लिये उससे कलह मोल लेते हैं ?

ययाति—तुम्हारे प्रेम के लिये मुझे देवयानी का भय ?

शर्मिष्ठा—है कैसे नहीं ?

ययाति—कहां है ? क्या मैंने तुहें देवयानी से अधिक पुत्र नहीं दे रखे हैं ?

शर्मिष्ठा—मेरी ही भांति जीवन का बोझ वे भी ढो रहे हैं। मेरा अपराध बना दिया गया कुछ, उन्होंने किसी का क्या बिगाड़ा है महाराज ? कुछ कहकर उन्हें समझा देने की बात दूसरी है। राजभवन महारानी देवयानी का, मैं उनकी दासी, यह सब चल सकता है। वे दासी के पुत्र कहे जांय, यह सब सह सकती हूं। लेकिन, लेकिन महाराज —[रोने लगती है।]

ययाति—तुम रोने लगी शर्मिष्ठा। तुम्हारी सहनशीलता पर क्या चोट पड़ी ?

शर्मिष्ठा—लोग कहते हैं...(रुक जाती है।)

ययाति—तुम दासी हो, इससे अधिक वे और क्या कह सकते हैं ?

शर्मिष्ठा—वे कह सकते हैं—कहते हैं महाराज।

ययाति—(अधीरता से) वे क्या कहते हैं ?

शर्मिष्ठा—वे मुझे कलङ्किनी कहते हैं।

ययाति—[चौंककर शर्मिष्ठा को देखता रह जाता है।]

शर्मिष्ठा—वे आपके पुत्र !.....

ययाति—पर राख में ढके हुए। जिस दिन खुल जावेंगे, सारा राज्य उन अग्निकुमारों को देकर चौंक पड़ेगा। जब तुम्हारे स्वामी को तुम्हारे शील और सत्य में कोई शङ्का नहीं है तो संसार को बकने दो।

शर्मिष्ठा—कैसे महाराज ? [अञ्चल से आंसू पोंछती है।]

ययाति—अच्छा तो मैं उन्हें अपने पुत्रों में प्रकट करता हूं—बुलाओ उन्हें। मैं अभी उनके कपड़े बदल उन्हें राजकुमारों की पंक्ति में बिठाता हूँ।

शर्मिष्ठा—ऐसा आपने कई बार कहा है। [कोई ध्यान न दे जूठे बर्तन लेकर चली जाती है।]

[ययाति दर्पण में अपना मुख देखता है। शर्मिष्ठा के दोनों बेटे छिपकर कमरे में झांकते हैं, ययाति को देख घबराते हैं।]

ययाति—[दर्पण में देखते हुए।] मैंने दर्पण में तुम्हारा प्रतिबिम्ब देख लिया है। घबराने की कोई बात नहीं। तुम अपनी माता को ढूंढ रहे हो ? [सिंहासन पर बैठता है।]

बड़ा बेटा—[हाथ जोड़कर] हां महाराज।

मंझला बेटा—[घबराकर भाई को खींच लेना चाहता है।]

ययाति—ठहरो, मेरा तुम से कुछ काम है। बैठ जाओ इस चौकी पर।

बड़ा बेटा—[चकरा कर] इस चौकी पर ? [चकित होकर भाई की ओर देखता है।]

मंझला बेटा—[आश्चर्य में पड़कर अपने मैले कपड़ों को टटोल कर भाई को दिखाता है] इस चौकी पर ? नहीं महाराज, हम तो भूमि पर बैठते हैं। [भूमि पर बैठ जाता है।]

बड़ा बेटा—आपका राजसी आसन मैला हो जायगा। [वह भी भूमि पर बैठ जाता है]

ययाति—हैं ! हैं ! यह क्या करते हो ? सिंहासन पर अपना राजमुकुट रख, वहां से उन दोनों के हाथ पकड़ उठा देता है।]

बड़ा बेटा—हम दासी के बेटे, आपके चाकर हैं।

ययाति—चाकरों के भीतर भी क्या भगवान् नहीं बोलते ?

बड़ा बेटा—लेकिन उनका रूप-रङ्ग श्रीमान् के भगवान् से अलग होता है। हमें तो यह धरती ही अच्छी लगती है।

ययाति—तुम्हें देखकर बड़ी दया आती है।

बड़ा बेटा—[भूमि पर बैठे हुए अचानक उठ जाता है।] दया कैसी ? हम दास हैं तो अपने परिश्रम का खाते हैं, भिखारी तो नहीं हैं, फिर क्यों हमें देख कर किसी की दया उमड़ आय ? नहीं महाराज हम धरती पर भी नहीं बैठेंगे।

ययाति—मैं सच्चाई को अधिक दिन बांध कर नहीं छिपा सकता [दोनों हाथों से मुट्ठी बांध कर छाती पर लगाता है।]

बड़ा बेटा—सच्चाई क्या है महाराज ? इस भेद-भरे राज-भवन के अन्धकार में बहुत दिन से हम भी उसे टटोल रहे हैं।

ययाति—अपने ही उजाले में फैल गई सच्चाई। [मुट्ठी खोल दोनों के कन्धों पर दोनों हाथ रख देता है।] तुम दोनों राजपुत्र हो।

बड़ा बेटा—आश्चर्य है ! मैं राजपुत्र हूं ? [भाई को देखता है।]

मंझला बेटा—मैं भी तो। [दोनों हाथों से भाई के हाथ पकड़ लेता है] नहीं महाराज झूंठ नहीं बोल सकते।

बड़ा बेटा—हम दोनों राजपुत्र हैं।

मझला बेटा—लेकिन महाराज, यह तो दूसरी ही बात पैदा हो गई। हमने सुना था, कि हमारी माता राजकुमारी है।

ययाति—वह भी राजकुमारी हैं।

बड़ा बेटा—तब क्या यह एक महान् धोखा नहीं है। इतना बड़ा सत्य छिपाकर हमें इस दासता में पाला जा रहा है। क्या कारण है महाराज ?

मंझला बेटा—हमारे पिता का क्या नाम है ?

ययाति—समय आने पर जान लोगे।

बड़ा बेटा—तभी मैं स्वप्न में अपने आपको बराबर सोने के सिंहासन पर बैठा हुआ पाता था।

मंझला बेटा—और युद्ध क्षेत्र में मेरा अंगूठा धनुष की टङ्कार से मेरी नींद तोड़ता था।

ययाति—अब तो बैठ सकते हो चौकी पर।

बड़ा बेटा—नहीं, जब तक पिता का नाम नहीं जान लेते।

मंझला बेटा—महाराज, बता क्यों नहीं देते ?

ययाति—सहन कर सकोगे उस विचित्र सत्य को ?

बड़ा बेटा—क्षत्रिय का बेटा पीठ पर नहीं छाती पर तीर को सहन करता है।

ययाति—तुम दोनों मेरे पुत्र हो।

बड़ा बेटा—[चौंक कर ययाति का एक हाथ पकड़ लेता है।] सच ?

मंझला बेटा—चौंक कर ययाति का दूसरा हाथ पकड़ लेता है।] सच ?

ययाति—हां-हां ध्रुव के समान एक अटल और उज्ज्वल सत्य।

मंझला बेटा—पिता ! पिता ! इन दो अक्षरों के उच्चारण को धरती और आकाश की शून्यता में हम पुकारते ही रह गये। किसी ने जवाब नहीं दिया। हमारा उपहास करने वाले अधिक थे और चारों दिशायें हमारे प्रवेश के लिये अवरुद्ध थीं।

मंझला बेटा—दूर से आपको देखकर कभी-कभी ममता से यह हृदय आपकी ओर खिंच पड़ता था, लेकिन आपकी तनी हुई भौंहें और चाटुकारों की भीड़ से साहस टूट जाता था

बड़ा बेटा—पिता ! पिता ! [ययाति के पैर पकड़ लेता है।]

मंझला बेटा—पिता ! पिता ! [ययाति के पैर पकड़ लेता है।]

ययाति—नहीं, नहीं, अभी इतने ऊंचे स्वर और प्रकट भाव से नहीं। [दोनों को उठाकर अपनी छाती से लगाता है]

बड़ा बेटा—क्यों, ऊंचे स्वर से क्यों नहीं ?

मंझला बेटा—चाहते तो हम हैं एक ही पुकार से राज्य के सभी घरों में यह गूंज पैदा करदें कि हम राजकुमार हैं।

बड़ा बेटा—राजकुमारों को कैसा भय महाराज ?

ययाति—[बड़े बेटे का हाथ पड़ कर धीरे-धीरे] तुम्हारी माता महारानी देवयानी के शाप से दबी हुई हैं।

बड़ा बेटा—हमारी माता का अपराध ? [चौकी पर बैठता है।]

मंझला बेटा—हमारी माता राजपुत्री हैं। [चौकी पर बैठता है।] उनके पिता का नाम नहीं बताया आपने।

ययाति—उनका नाम महाराज वृषपर्वा है।

बड़ा बेटा—[चौकी से उठ जाता है।] महाराज वृषपर्वा की राजकुमारी आपके महलों में झाड़ू देती है और देवयानी एक ब्राह्मण की कन्या महारानी बन गई।

ययाति—देवताओं की इच्छा !

बड़ा बेटा—[कमर पर हाथ रख कर टहलता है] काई की परत काटकर खड्ग की धार में पानी उतर आया है । हम राजकुमार हैं। [दीवार में टंगी तलवार उतार लेता है ।]

मंझला बेटा—[जी टहलते हुए] राख के नीचे दबे हुए अंगारों में ज्वालायें प्रकट हो गई हैं । [सिंहासन पर रक्खे हुए राजमुकुट को उठा लेता है ।] हम होने वाले महाराज हैं ।

बड़ा बेटा—यह बड़े पुत्र का अधिकार है। [तलवार फेंककर भाई के हाथ से राजमुकुट ले लेता है ।]

मंझला बेटा—[भूमि पर से खड्ग उठाकर तानता है ।] मैं सेनापति तो बन सकता हूं ।

ययाति—[बड़े बेटे के हाथ से मुकुट लेकर] लेकिन अभी तो मैं जीवित ही हूं । [कुछ सोचकर] मेरे जीवन में ही इसे पहनने की इच्छा है तुम्हारी ?

बड़ा बेटा—[सगर्व] मैं राजकुमार हूं ।

ययाति—एक काम कर सकोगे ?

बड़ा बेटा—कौन सा ?

ययाति—अपनी जवानी का एक वर्ष संकल्प कर मुझे दे सकते हो ?

बड़ा बेटा—[गम्भीर हो, सिर खुजाकर] और उसके बदले में कितने समय तक आप यह राज और राजमुकुट सौंप देंगे मुझे ? एक वर्ष के लिए भी हो तो क्या कम है ? लेकिन जो एक वर्ष आप मेरी आयु का लेंगे, वह मेरे बुढ़ापे में से कट जायेगा या जवानी से ।

ययाति—कटेगा कहीं से नहीं, बदला जायेगा । तुम्हारी जवानी मेरी होगी और मेरा बुढापा मिलेगा तुम्हें ।

बड़ा बेटा—झुकती हुई कमर, हिलते हुए दांत, सफेद बाल, धुंधली नजर, कफ से घिरा, वात में फंसा—यही तो बुढ़ापा है । ज्ञान और कर्म

का दिवाला। [ठंडा सांस लेकर] नहीं महाराज।

मंझला बेटा—[तलवार दीवार के सहारे रख ययाति के हाथ से राजमुकुट ले लेता है।]

ययाति—बुढ़ापे से इतना क्यों घबरा गये ? क्या जवानी उसी तक पहुंचने का एक पड़ाव नहीं है ?

बड़ा बेटा—लेकिन इस तरह बुढ़ापा मोल लेकर जवानी के गले मढ़ देना निश्चय लडकपन है।

मंझला बेटा—[राजमुकुट पहन दर्पण में मुख देखता है।] कुछ बड़ा है। छोटा हो सकता है ?

ययाति—वत्स, तुम हो तैयार ?

बड़ा बेटा—[ओट से उसे संकेत द्वारा मना करता है।]

मंझला बेटा—यौवन को बुढ़ापे से कौन बदल देना चाहेगा ?

ययाति—इतनी सरलता से राजमुकुट के नीचे सिर भी तो नहीं बदला करते।

मंझला बेटा—महाराज आपने हमारी स्थिति बढ़ा दी, हमने अपना आशायें।

ययाति—महारानी देवयानी के भी दो पुत्र हैं, राजा केवल एक ही होता है। बिना संघर्ष के ही जब मैं तुम्हें राजपद देता हूं तो क्या वह ऐसे वैराग्य की वस्तु है ?

मंझला बेटा—एक ही वर्ष के लिए ? संकल्प होने पर क्या होगा ? आप युवक हो जावेंगे और मैं बूढ़ा ?

ययाति—हां कुछ ऐसा ही समझो। लेकिन असल में हमारे शरीर नहीं बदलेंगे। यह घर ऐसे ही रहेंगे पर इनमें रहने वालों का परिवर्तन हो जायेगा। इन्द्रियां यहीं रहेंगी। मन बुद्धि को लेकर मेरी आत्मा तुम्हारे शरीर में रहने लगेगी और तुम्हारी चेतना का डेरा हो जायेगा मेरे अंग में।

बड़ा बेटा—[फिर ओट मे संकेत करता है।]

मंझला बेटा—इस शरीर में रहना पड़ेगा मुझे ? बड़ा भयानक अधिवास है यह महाराज। बुनियाद खोखली हो गई, छत टपकने लगी है, पलस्तर में झुर्रियां पड गई, ईंटों की एक-एक हड्डी दिखाई देने लगी। नहीं महाराज, मुझे ऐसे घर में घुसने के लिये कोई द्वार नहीं दिखाई देता। यह राजमुकुट संभालिये। मैं दासी का बेटा पुकारा जाने में सुखी हूं। [राजमुकुट लौटा देना चाहता है।] बूढ़ा कहलाया जाना पसंद नहीं मुझे।

बड़ा बेटा—[बीच ही में उसके हाथ से राजमुकुट ले स्वयम् पहनकर दर्पण में मुख देखने लगता है।]

मंझला बेटा—[दूर से देवयानी को आता देख खिसक जाता है।]

ययाति—[भी देवयानी को आता देख दृष्टि दूसरी तरफ कर लेता है ।]

देवयानी—[सहसा आकर एक हाथ से बड़े का कान पकड दूसरे से उसके सिर पर का राजमुकुट उतार लेती है।] दासी के बेटे ! सिर में राजमुकुट पहनकर इस उजले दर्पण में किस काले भविष्य से बातें कर रहा है ?

ययाति—[भी खिसक जाता है।]

बड़ा बेटा—दासी का बेटा ! कौन है दासी का बेटा ?

देवयानी—तू है, तू दासी का बेटा। अपनी मां से जाकर पूछ।

बड़ा बेटा—पिता तो कहते हैं... [कमरे में पिता को न देख निराश होता है ।]

देवयानी—कौन है तेरा पिता ! [दीवार के सहारे से तलवार उठाकर] निकल बाहर अभी मेरे कमरे से।

बड़ा बेटा—मैं इस राजमुकुट पर की धूल झाड़ रहा था।

देवयानी—झूंठा कहीं का । अब तुम किसी बहाने से भी यहां न आने पाओगे । निकल बाहर । [तलवार क नोक से उसे मार्ग दिखाती है ।]

बड़ा बेटा—[सिर झुकाकर चला जाता है ।]

ययाति—[आकर] क्यों, क्यों, क्या हो गया देवयानी ? खड्गधारिणी ! तुम्हारी भौंहों के बल कैसे तीक्ष्ण हो उठे ? किस पर है ऐसा क्रोध ?

देवयानी—तुम्हारे ही सामने तो, तुम्हीं ने इन दासी के बेटों का इतना साहस बढ़ा दिया । यदि तुम इस राजमुकुट को संभाल कर नहीं रख सकते तो मैं पहन सकती हूं ।

ययाति—[उसके हाथ से राजमुकुट लेकर उसे पहना देता है ।] कितनी सुन्दर और मनोहर दिखायी देने लगीं तुम ?

देवयानी—[राजमुकुट उतारकर ययाति को देती हुई] इन दासी के बेटों से बचाकर इसे न रखोगे, तो पछताना पड़ जायेगा ।

ययाति—[राजमुकुट पहन लेता है ।] दया करो देवयानी, तुम ब्राह्मण की कन्या हो ।

देवयानी—हूं ऽऽ, तमाम हिंसा-भरे विष के दांतों पर फूल चढ़ा उनकी आरती उतारूं ? क्यों ?

ययाति—ऐसा विष का वह दांत किसका है ?

देवयानी—क्यों नहीं बार-बार उस इतिहास को दुहरा सकती मैं ? भूल क्यों जाते हो तुम ? मेरी हत्या का दण्ड पाकर ही वह मेरी दासी बनी है ।

ययाति—तुम्हारी दासी हो सकती है, मेरी तो नहीं है । फिर उसके पुत्रों ने क्या बिगाड़ा है तुम्हारा ? क्यों उनका पिता उनसे छिपा दिया जाय ?

देवयानी—वे किसके पुत्र हैं ?

ययाति—वे मेरे पुत्र हैं, वे राजकुमार हैं।

देवयानी—[क्रुद्ध हो] हैं ! क्या कहा तुमने ?

ययाति—तुम क्या चाहती हो कि राजदण्ड धारण करने वाला तुम्हारा स्वामी तुमसे झूंठ बोले, संतान को अंधेरे में रख दे, प्रजा से कपट करे, सारे जगत को धोखे में रख दे ?

देवयानी—तुम्हें अपने पवित्र कुल में कलंक लगाना पसंद है ?

ययाति—सत्य कैसा कलंक है ?

देवयानी—मेरी दासी से छिपकर किया गया यह तुम्हारा प्रेम, क्या सत्य इतना ही उज्ज्वल है ?

ययाति—शर्मिष्ठा को जब मैंने प्यार किया था, तब वह तुम्हारी दासी नहीं थी, उसके बाद तुम दोनों का झगड़ा हुआ । मै नहीं जानता, तुम कहती हो उसने तुम्हें कुएं में डाल दिया और वह कहती है, तुम स्वयम् गिर पड़ीं। इस बात का समझ लो, अगर तुम कुएं में न पड़तीं तो न मैं तुम्हारा हाथ पकड़ कर बाहर निकालता और न तुम हाथ पकड़ लेने के लिये मुझे पाणि-ग्रहण कर लेने को विवश करतीं। इस लिये हमारे विवाह की जड़ में तुम्हारा प्रेम नहीं, शर्मिष्ठा है। उसकी सौम्यता देखो, वह सिर नीचा कर तुम्हारी दासी बनी हुई है और मेरा न्याय देखो, मैंने तम्हें ही महारानी बनाया है।

देवयानी—उसके पुत्रों को राजमुकुट दिखाकर तुम राजभवन के भीतर आग लगा देना चाहते हो क्या ? सबसे बड़े पुत्र को मैंने दूध पिलाया है । उस ब्रह्मघातिनी के बेटे राजमुकुट पहनेंगे और मेरे कुमार उनकी टहल करेंगे क्या ? [पैर पटकती है ।] नहीं, यह नहीं हो सकता ! मैं शुक्राचार्य की लाड़-प्यार मे पली पुत्री, इस तरह ठोकरें खाने के लिये आई हूं क्या यहां ? [रोने लगती है ।]

ययाति—तुम पंडिता हो, अगर तुम इस तरह उदारता को फांसी पर चढ़ा दोगी तो प्रजा के लिए कौनसा आदर्श बच रहेगा ? तुम आश्रम

पली हुई कन्या हो। तुमने जीवन की ऊंच-नीच सभी कुछ देखी हैं। तुम समिधा और पानी ढोती थीं। अरणि को मथकर आग सुलगातीं दही बिलोकर हवन की आहुति बनाती थीं। तुम यज्ञ की वेदी को लीपतीं, झाड़ू देतीं और कपड़े भी धोती थीं और वह शर्मिष्ठा—राजभवन की अनगिनती दासियां उसके श्रम पर फूल बिछाती रहती थीं।

देवयानी—इसी से तो वह गुरु कन्या के प्राणों की प्यासी हो उठी।

ययाति—ऐसा न कहो। तुम्हें मारने से उसे क्या लाभ होता? देखो आज इतने वर्षों से वह तुम्हारी लात और गालियां सहती चली आ रही है। वह पवित्र हो गयी, उसका प्रायश्चित हो गया।

देवयानी—कौन बकता है? मेरी प्रतिहिंसा तो अभी नवीन ही है। [तलवार दीवार में टांगकर चली जाती है।]

[दूसरी ओर से देवयानी का बड़ा राजकुमार आता है।]

ययाति—आओ युवराज, क्या अपनी माता देवयानी को ढूंढ रहे हो? मेरा भी तुमसे एक आवश्यक काम है।

बड़ा राजकुमार—[चौकी में बैठकर] आज्ञा दीजिए।

ययाति—एक वर्ष के लिए मुझे अपना यौवन दे सकते हो?

बड़ा राजकुमार—फिर मेरे पास क्या बच रहेगा महाराज? मेरा बचपन।

ययाति—नहीं मेरा बुढ़ापा।

बड़ा राजकुमार—यह किस लिए महाराज?

ययाति—मेरी कुछ कामनायें रह गई हैं, उन्हें समाप्त कर देने के लिए।

बड़ा राजकुमार—मैं समझ गया, पूर्व और दक्षिण की ओर कई वर्षों से आप राज्य की सीमा बढ़ाना चाहते थे। आशीर्वाद

दीजिये, मैं बढ़ा ले चलूंगा उधर सेना। पिता के अधूरे मानचित्रों की पूर्ति पुत्र का परम कर्त्तव्य है।

ययाति—बाहरी राज्य की सीमायें नहीं, भीतरी राज्य की कमी दूर करने को।

बड़ा राजकुमार—राज्य के किस भीतरी शत्रु से आप चिंतित हैं ?

ययाति—राज्य के तो नहीं, मेरे मनके भीतर एक शत्रु है, उसी को मिटाना चाहता हूँ।

बड़ा राजकुमार—कौन है वह ?

ययाति—कामना, अब भी नहीं समझे।

बड़ा राजकुमार—वैराग्य से उसे जीत सकते हैं।

ययाति—कर्म के युद्ध-क्षेत्र में पीठ दिखाने का नाम ही वैराग्य है।

बड़ा राजकुमार—नहीं महाराज, कामना को कुचल कर उस पर विजय पाने का नाम वैराग्य है। बुढ़ापा ही उस वैराग्य से मिलती-जुलती अवस्था है। जवानी पाकर तो मन और भी चंचल हो उठेगा।

ययाति—नहीं राजकुमार, इन्द्रियों के दुर्बल पड़ जाने पर जो वैराग्य है, वह साधना नहीं, श्रांति है; जीत नहीं, हार है। हमारी आंखों के फूट जाने पर क्या रूप का आकर्षण नष्ट हो गया, क्या वह वैराग्य है ? बुढ़ापे में अतृप्त कामनाओं की समाधि पर वैराग्य का झण्डा नहीं गाड़ा जा सकता। यौवन के उद्धत वेग को ज्ञान की शक्ति से रोक देना ही सच्चा वैराग्य है। इसीलिए पीछे को लौट जाना चाहता हूं।

बड़ा राजकुमार—पीछे को कौन लौटता है ? बुद्धिमान की दृष्टि बराबर आगे को ही रहती है। इसी से उसे दूरदर्शी कहते हैं। अपनी पूंजी के यौवन से जब कुछ न हो सका, तो इस उधार की जवानी से

क्या होगा ?

ययाति—जीवन एक जुआ है। जुवे की हार बड़ी मीठी होती है। इस सर्वविजयी महाकाल के साथ एक दांव और लगाना चाहता हूँ, विश्वास तो है इस बार हारे हुए जीवन की सारी पूंजी वापस जीत लूंगा।

बड़ा राजकुमार—महाराज काल से कौन जीत सका ?

ययाति—काल का सहायता से कामना को जीतने से मतलब है मेरा।

बड़ा राजकुमार—एक बार जवानी पाकर जो हुआ, वही दूसरी बार भी क्यों न हो जायगा महाराज ?

ययाति—यह बुढ़ापे का अनुभव कहा था पहले ? [राजमुकुट हाथ में दिखाकर] तुम्हारा घन्टा इससे पूरा कर दिया जायेगा।

बड़ा राजकुमार—हं-हं-हं ! महाराज इस पर मेरा ही अधिकार तो है।

ययाति—पर वह मेरी मृत्यु के बाद की बात है।

बड़ा राजकुमार—उसके एक दिन का लेख अटल है। मुझे धीरज क्यों न हो ?

ययाति—मौत क्या जवान से डरती है ?

बड़ा राजकुमार—बूढ़े को ही जवानी का लालच क्यों हो ? महाराज आपकी यह चौथी अवस्था भगवान् के भजन के लिए है। इस में कब तक आप विषयों की खेती करेंगे ?

ययाति—उपदेश नहीं, मैं तुम्हारा यौवन चाहता हूँ। एक वर्ष के लिए उसे पिता को नहीं दे सकते ?

बड़ा राजकुमार—निःसन्देह आप ही मेरे जनक हैं, वह बचपन बीत गया मेरा। उसकी जगह इस यौवन को मैंने अपनी ही आशा और उमंगों से संवारा है। महाराज, शरीर में सुख है, तो बाहरी जगत

का दुःख भी सुख-रूप हो जाता है। बीमारी और बुढ़ापे से कांपते हुए हाथों में राजदण्ड लेकर कोई सुख नहीं मिल सकता।

ययाति—तुम मूर्ख हो, इतनी पढ़ी-लिखी, शास्त्रों की पण्डिता देवयानी का ऐसा पुत्र !

बड़ा राजकुमार—माता-पिता का क्या दोष ? मैं अपने विचारों के लिये स्वतन्त्र हूँ।

ययाति—मैं ऐसे पुत्र का मुख नहीं देखूंगा।

बड़ा राजकुमार—विवशता है। [सिर नीचा कर धीरे-धीरे चला जाता है।]

[पृष्ठ-संगीत]

ययाति—[इधर-उधर टहलता हुआ दर्पण में मुख देखता है। फिर टहलता है। सहसा नैपथ्य में छोटे राजकुमार को देखकर पुकारता है।] राजकुमार !

छोटा राजकुमार—[आकर] यह छोटा राजकुमार महाराज को प्रणाम करता है।

ययाति—चिरंजीवी होओ राजकुमार। हूँ-हूँ-हूँ ! तुम अपने को छोटा राजकुमार समझते हो ! विधाता की यह भूल तुम्हारी समझ में से निकाल दी जा सकती है। क्यों नहीं तुम बड़े राजकुमार हो सकते ?

छोटा राजकुमार— [भौचक्का रहकर] मैं नहीं समझा महाराज।

ययाति—बड़े राजकुमार में नम्रता और शिष्टाचार की कमी है। पिता की आज्ञा को ठोकर मारने वाला पुत्र, क्यों छोटा नहीं बनाया जा सकता ? आयु से क्या होता है ? अधिकार देने वाला मैं हूं। मैं उसे देश-निकाला भी दे सकता हूं।

छोटा राजकुमार—[हाथ जोड़कर] महाराज का क्रोध शांत हो।

युवराज से शायद कोई भूल हो गई। मैं उन्हें समझाकर ले आता हूँ। आप उनका अपराध क्षमा करदें।

ययाति—नहीं राजकुमार, कहीं न जाओ। मैं उनका मुख भी नहीं देखना चाहता। जब तुम मेरी आज्ञा मानने को तैयार हो, तो मैं अपने राज्य का अधिकार तुम्हें सौंप दूं।

छोटा राजकुमार—[बड़े संकोच के साथ हाथ जोड़कर] महाराज।

ययाति—[राजकुमार के कन्धे पर हाथ रख कर] बात ऐसी है राजकुमार, मैं तुम्हारे युवा शरीर के साथ अपनी इस बूढ़ी काया को बदलना चाहता हूं—केवल एक साल के लिये।

राजकुमार—[अचम्भे के साथ] महाराज! क्या ये बदले जा सकते हैं?

ययाति—मन्त्र की शक्ति अथाह और अनन्त है। गुरुदेव ने उस मन्त्र को सिद्ध किया है। अगर तुम शुद्ध मन से संकल्प कर देने को तैयार हो तो ऐसा हो सकता है।

राजकुमार—[पिता का हाथ कन्धे पर से हटा देता है] लेकिन महाराज, पुत्र तो पिता की देन है। दी हुई चीज को वापस ले लेना दाता की शोभा नहीं है। आप फिर युवक होकर करेंगे क्या? प्रत्येक जवानी बुढ़ापे के मुंह में खिचती चली जा रही है। फिर पुत्र की जवानी लेकर, पिता विलास की होली खेले, यह भी कोई बात हुई, लोग कहेंगे क्या?

ययाति—तुम नहीं समझे। विलास के लिये नहीं, मन को वश में करने के लिये।

छोटा राजकुमार—यह तो बड़ी उल्टी बात है।

ययाति—सुनो, भोग में भी योग है और योग में भी भोग। मन को बेड़ियों में जकड़ देने या उसे भूखा मार देने से वह वश में

नहीं होता, उल्टा विद्रोही हो जाता है। कामनाओं की तृप्ति से ही इच्छायें समाप्त होती हैं और मन की बागडोर हाथ में आती है। बुढ़ापे में कामनायें मरती नहीं, वे मूर्छित पड़ी रहती हैं। मैं उन्हें यौवन का बल पाकर मिटा देना चाहता हूं।

छोटा राजकुमार—लेकिन पुत्र के यौवन से ? उसे तो आप बहुत दिन तक जीने के आशीर्वाद देते रहते हैं। पुत्र ? आप उसके जनक हैं तो क्या ? है तो वह भी आपकी प्रजा की ही एक इकाई। प्रजा के एक व्यक्ति की आयु का सबसे बढ़िया भाग छीन लेना क्या उसकी हत्या नहीं है।

ययाति—छीन कहां रहा हूं ? बदले में उसे अपनी आयु दे रहा हूं, फिर एक ही वर्ष के लिये तो। सुनो, कुछ वर्ष बाद तुम्हारा बूढ़ा हो जाना भी अटल है। बुढ़ापे में पड़ने बुढ़ापे का अनुभव हो जायगा तो यौवन की क्रीडाओं में खो न जाओगे।

छोटा राजकुमार—महाराज, आपके यौवन को बीते कई वर्ष हो गये, आप भूल गये। मैं आपको हाल की याद दिलाता हूं। जवानी एक आंधी और झञ्झा है। चित्त की कोई लौ ठहर नहीं सकती उस हवा में। राज्य की इतनी बड़ी जनता के सुख-दुःख का भार आपके कन्धों पर है। यौवन झूठा और दो दिन का है। इस लोक और परलोक किसी की भी साधना नहीं हो सकती उस पागलपन में।

ययाति—खेद है तुम मेरी बात समझ नहीं सके। मेरा मतलब कदापि भोग नहीं है, वह योग ही है। [राजमुकुट दिखाकर] यह मणियों से जड़ा हुआ मुकुट तुम्हारा होगा।

छोटा राजकुमार—यह बड़े भाई की वस्तु, इसका लालच क्यों देते हैं आप मुझे ?

ययाति—इसको चाहे जिसकी वस्तु बना दूं, इसका स्वामी मैं हूं।

छोटा राजकुमार—नहीं, मैं उनकी आंख का कांटा बनना नहीं चाहता।

ययाति—और तुम्हें अपने पिता के मार्ग की ठोकर हो जाना स्वीकार है।

छोटा राजकुमार—[सिर नीचा कर चुप रहता है।]

ययाति—बोलो, कोई उत्तर है तुम्हारे पास।

छोटा राजकुमार—[फिर चुप ही रहता है।]

ययाति—जाओ, हटो, दूर होओ, मैंने तुम्हें भी परख लिया। दुःख है, देवयानी की कोख मेरे उत्तराधिकारी को उत्पन्न न कर सकी। उसे अपने शास्त्र-ज्ञान का बड़ा घमण्ड था। ऐसे ही स्थिर न रहेगा तुम्हारा यह यौवन। इसे खा जाने के लिए, हर घड़ी बुढ़ापा तुम्हारे पीछे दौड़ रहा है। बच कर न कहीं भाग सकोगे, न कोई निमित्त ही बन सकेगा।

छोटा राजकुमार—अपराध क्षमा हो महाराज।

ययाति—दूर चले जाओ, अपने बीते हुए यौवन की राख समझ लांछित करता हूं मैं तुम्हें।

छोटा राजकुमार—[धीरे-धीरे जाने लगता है।]

ययाति—ठहरो, तुम्हारा अभिमान नष्ट करने के लिये जो कहता हूं उसे भी सुनते जाओ। सुनो, शर्मिष्ठा के वे तीनों बेटे, जिन्हें तुम्हें दासी-पुत्र कहना सिखाया गया है, वे मेरे पुत्र हैं, वे तीनों राजकुमार हैं।

छोटा राजकुमार—[सिर से पैर तक कांप उठता है।]

ययाति—उनमें सबसे छोटा, जिसका नाम पुरु है, जिसके रूप, गुण और विद्या-बल को तुम लोगों ने फटे और मैले कपड़ों में ढकने की चेष्टा की थी, छिप नहीं सका। अङ्गारों को कौन चादर में लपेट सकता है? याद करो, जब मैं पहली बार उसे पुत्र का

सम्बोधन देकर छाती से लगाऊंगा. उसके स्वरूप की पहिचान जाग उठेगी । वह अवश्य मेरी बात मान लेगा । समझ लो, हमारी आत्माओं के बदलने के साथ ही, तुम्हारी स्थिति भी क्या उलट न जायगी । जाओ मेरी अवज्ञा के साहस, पिता की फिटकार के विषैले फल को खाने के लिये तैयार रहो ।

छोटा राजकुमार—महाराज !

ययाति—नहीं, ऊसर में फेंक देने के लिये मेरे पास कोई आग्रह नहीं, हटो, जाओ, निकलो !

छोटा राजकुमार—[धीरे-धीरे सिर नीचा कर चला जाता है ।]

शर्मिष्ठा—[आकर धीरे-धीरे झाड़ू देने लगती है ।]

ययाति—शोक है, तुम्हारी इस सच्ची सेवा से देवयानी कभी प्रसन्न न हुई । एक दिन पछताना पड़ेगा उसे । और भी सुनो, उसके दोनों पुत्रों में से किसी के भी कन्धे मेरे राज्य को सह सकने के लिये दृढ़ नहीं है ।

शर्मिष्ठा—[झाड़ू रोककर ययाति का मुख ताकती रह जाती है ।]

ययाति—क्षत्रिय के पुत्र को शस्त्र की प्रेरणा चाहिये, शस्त्र की धारणा केवल मस्तिष्क का विलास है । वे तीनों मां बेटे ज्ञान बघारने मे चतुर हैं । जब तक कर्म के साथ उसका मेल नहीं हो जाता कोरे ज्ञान से होता क्या है ?

शर्मिष्ठा—प्रभात से सन्ध्या समय तक हम भी तो कर्म का बोझ ढोते रहते हैं, ज्ञान के साथ हमारी ही कौन सी मित्रता है ?

ययाति—जूठे बर्तन मलते-मलते तुम्हारा सारा घमण्ड धुल गया है । तुम नहीं जानती हो, तुम क्या हो ? जिस निच्छल, निरालस और नियम से तुम कर्तव्य को पूरा करती हो, वह क्या कोई छोटा ज्ञान है । तुम उससे भरपूर छलकती हुई हो ।

शर्मिष्ठा—[नेपथ्य में कोई आहट सुन अपने होठों पर हाथ रख

ययाति को संकेत देती है और फिर झाड़ू देने लगती है।]

ययाति—नहीं, किसी की डर नहीं। मैं सम्राट हूं। एक झूठा भय दिखा कर तुमने मुझे कायर बना दिया! सत्य को सामने उतर आने दो शर्मिष्ठे! देवयानी आ जायगी तो क्या होगा? मैं उसका स्वामी हूं। मेरी बात पर दृढ़ क्यों नहीं हो जातीं? तुम्हारी दासता की अन्तिम घड़ी बीत गयी। फेंक दो इसे। [उसके हाथ से झाड़ू छीनकर फेंक देता है।] तुम प्रेम किये जाने के लिये बनाई गई हो, इस नीच कर्म के लिये नहीं।

शर्मिष्ठा—कर्म कोई नीच नहीं है महाराज। नीच विचार से आदमी नीच बनता है। मेरे भाग्य का लेख, वह राजा के घर जन्म लेने पर भी नहीं मिटा और राजा से विवाह होने पर भी नहीं।

ययाति—मैंने निश्चय कर लिया है, मैं मिटा दूंगा उसे।

शर्मिष्ठा—कैसे मिटा देंगे आप?

ययाति—[शर्मिष्ठा के कन्धे पर हाथ रखता है।] कुछ भूल तुम्हारी है और कुछ अपराध मेरा।

शर्मिष्ठा—[रोती है, अञ्चल से अपने आंसू पोंछती है।]

[अचानक दबे पैर देवयानी आ जाती है। यह दृश्य देख वह जल उठती है। उसके आते ही ययाति अपना ध्यान दर्पण की ओर करता है और शर्मिष्ठा सिर नीचा कर झाड़ू की ओर बढ़ना चाहती थी कि देवयानी ने उसे उठाकर शर्मिष्ठा के सिर पर दे मारना चाहा। ययाति ने बीच में पड़ झाड़ू छीनकर फेंक दिया।

देवयानी—चाण्डालनी, झाड़ू देने के बहाने तू यहां पर प्रेम-लीला कर रही थी। तुझे मैं इसी लिए अपने साथ लाई हूं कि जन्म भर आठों पहर तेरे जीवन का उपहास देखती रहूं। तू मेरी सौत बनेगी? तेरा ऐसा साहस? उठा झाड़ू। [लात मारने को बढ़ती है।]

ययाति—[फिर उसे रोक देता है।]

शर्मिष्ठा—[झाड़ू उठाकर कूड़ा समेटने लगती है।]

देवयानी—और तुम महाराज ययाति ! बुढ़ापे की बड़े वेग से तुम्हारे ऊपर चढ़ाई हो चली है। लेकिन अभी तक तुम्हारी इन्द्रियों की प्यास नहीं गई।

ययाति—और जो तुम्हारी यह प्रतिहिंसा अभी तक नहीं मिटी, क्या वह तुम्हारी पशु-तृष्णा नहीं है ? देवयानी, तुमने अनेक शास्त्र पढ़े हैं। केवल श्लोक रट लेने से क्या होता है ? तुमने उस ज्ञान को कर्म के साथ कोई सन्धि नहीं की है और जब तक तुम शर्मिष्ठा के साथ अपने भाव शुद्ध न कर लो तब तक वह हो भी नहीं सकती। इधर आओ शर्मिष्ठे ! इधर देखो देवयानी ! यह है कर्म की साक्षात् प्रतिमूर्ति ! तुम ज्ञान और यह कर्म ! तुम दोनों अपने बीच का कलह मिटाकर अगर एक हो जाओ तो ययाति के जन्म के बन्धन खुल जायं ! [शर्मिष्ठा का हाथ लेकर देवयानी के हाथ से मिला देना चाहता है।]

देवयानी—[घृणा से अपना हाथ खींच लेती है] छीः कैसे मैले और अपवित्र हाथ हैं।

ययाति—लेकिन हृदय स्वच्छ है जैसे प्रभात का खिला हुआ कमल, यही तो हैं वे हाथ जिनकी अटूट सेवा से तुम्हारे राजभवन की सारी साज-सज्जा साफ-सुथरी रहती है। उन हाथों को मलिन कहकर उनसे घृणा करना तुम्हारा अत्याचार है।

देवयानी—[शर्मिष्ठा को सिर से पैर तक देख ताना मारकर] हृदय कैसा स्वच्छ जैसे कमल का फूल और उसमें विचारों की सुगन्ध कैसी कि गुरु की कन्या के प्राण—

ययाति—चुप रहो देवयानी, तुम बार-बार क्यों उस बचपन की भूल को खोद-खोद कर जिलाती रहती हो। चलो प्रतिज्ञा करो, अब किसी की भूल न दुहराओगी। क्षमा बहुत बड़ी पवित्रता है

देवयानी । धरती-माता उसी पर हरी-भरी है और स्वर्ग उसी पर चमकता है । क्षमा की स्तुति के न जाने कितने श्लोक तुम्हें याद होंगे ? एक अक्षर को व्यवहार में लाकर देखो तो सही, सारा जगत उजाले से भर उठेगा ।

देवयानी—[सोच-विचार में डूब जाती है ।]

ययाति—जाओ इन्हें अपने साथ ले जाओ । इनके दासता के बन्धन खोल दो आज । सुन्दर वस्त्र और आभूषण पहनाकर ले आओ । सारी राजधानी तुम्हारी जय पुकार उठेगी, स्वर्ग के समस्त देवता तुम्हारे ऊपर फूलों की वर्षा कर देंगे ।

देवयानी—मैं कौन हूं ? जिन्होंने दण्ड दिया है, वही क्षमा भी कर सकते हैं ।

ययाति—वह कौन ? शर्मिष्ठा के पिता ? झूठी बात । तुमने अपने पिता शुक्राचार्य के क्रोध को उभाड़ दिया और गुरुदेव के क्रोध से बचने के लिये ही महाराज वृषपर्वा को अपनी प्रिय पुत्री को आजन्म के लिए ऐसा कठिन दंड देना पड़ा । अगर तुम इसी घड़ी शर्मिष्ठा को क्षमा कर दो, क्या उसके पिता प्रसन्न न होंगे ?

देवयानी—मैं क्या जानूं ?

ययाति—तुम्हारे शास्त्र का ज्ञान झूठा है ।

शर्मिष्ठा—[वहां का कूड़ा समेट जाने लगी थी ।]

देवयानी—[बात टालकर शर्मिष्ठा से] चलो मेरे साथ, मैंने अभी तक स्नान ही नहीं किये हैं । पानी गरम है ? [देवयानी जाती है, शर्मिष्ठा विनत हो उसके पीछे-पीछे चलती है । दूसरी ओर से शर्मिष्ठा का सबसे छोटा बेटा पुरु आता है ।]

ययाति—आओ पुरु, आयु में सबसे छोटे पर शील में सबसे बड़े ।

पुरु—महाराज, मेरे भाइयों से आज यह क्या कह दिया आपने ? क्या हम भी राजकुमार हैं ?

ययाति—क्यों किसी को इसमें संदेह है ?

पुरु—और जिनको हम महाराज समझते चले आये, वही हमारे पिता भी हैं।

ययाति—हां यह भी उतना ही सत्य है।

पुरु—फिर सत्य इतना उज्ज्वल [अपने मैले वस्त्र दिखाकर] और हमारे कपड़े इतने मैले ?

ययाति—इन्हें बदलते क्या देर लगेगी ?

पुरु—पिता ! पिता ! संसार में मैंने देखा, सभी धनी नहीं थे, सभी पंडित भी नहीं, सभी बली नहीं थे, सभी रूपवान भी नहीं, लेकिन पिता से हीन, केवल हम तीन भाई हैं। जनता हमारी हंसी उड़ाती थी। माता आंसुओं से उत्तर देती थी, जिस तरह भगवान को लोग ढूंढते हैं, हम पिता को ढूंढ रहे थे जन-निर्जन में, पर आप हमारे इतने निकट और ऐसे छिपे हुए थे। मैं आराध्य देव पिता को प्रणाम करता हूँ।

ययाति—चिरंजीवी होवो वत्स ! पिता को पहचान लिया तुमने, यदि उसकी आज्ञा को भी पहचान सको, तो तुम्हारा यही मलिन वेश इसी घड़ी राजसी चमक में बदल जायगा। यही नहीं, इस राजमुकुट को देखते हो न ?

पुरु—पिता को प्राप्त करने की प्रसन्नता में मैं और कुछ भी नहीं देख रहा हूँ। पिता और पिता की आज्ञा, उन दोनों में भी क्या कोई अन्तर है ? दोनों ही समान भाव से मान्य हैं मुझे। आप महाराज हैं, आप ही पिता—यह दोहरे सम्बन्ध की आज्ञा, कौन इसे टाल सकता है महाराज !

ययाति—पुरु ऐसी भी बात नहीं है। तुम्हारे दोनों भाई मेरी इस आज्ञा को ठुकरा गये।

पुरु—आश्चर्य है, और उन्हें यह मालूम हो गया था कि आप ही हमारे पिता हैं।

ययाति—हां-हां, मैंने पहले इसी भेद को उन पर खोला था।

पुरु—मैं नहीं समझा उनकी मूर्खता। पुत्र का जन्म, जीवन और जगत सब पिता का ही प्रसाद है। फिर उनकी आज्ञा पर क्यों न मैं निछावर हो जाऊं। क्या आज्ञा है आपकी ?

ययाति—राजकुमार, मैं तुम्हारा यौवन चाहता हूं, एक वर्ष के लिए।

पुरु—केवल एक वर्ष के लिए ? महाराज पुत्र का तन और उसका यौवन, पुत्र का मन और उस मन में उदय-अस्त होने वाली समस्त कामनायें, ये सब पिता की ही सृष्टि हैं। मांगना क्या ? आप चाहें जिसे भी ले सकते हैं ?

ययाति—तुम अद्भुत हो पुरु, तुमसे इतने दिनों तक छिपे रहने मे बड़ा पाप हुआ।

पुरु—शास्त्रों ने कहा है, पिता ही धर्म-कर्म और पिता ही परम तप है। एक पिता की तृप्ति से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं।

ययाति—तुम धन्य हो पुरु। तुम आयु में मेरे सबसे छोटे पुत्र हो, किन्तु विद्या, विनय और विवेक में सबसे बड़े निकले। इसलिये आयु की बड़ाई क्यों राजमुकुट की अधिकारिणी हो ? वह क्यों नहीं गुण के मस्तक की शोभा बढ़ावे। यह राजमुकुट तुम्हारा होगा। [राजमुकुट पुरु के सिर पर रखना चाहता है।]

पुरु—लेकिन एक बात नहीं समझा महाराज ! मेरा यह तुच्छ यौवन किस तरह आपकी सेवा में भेंट दिया जा सकेगा ?

ययाति—तुम्हारी दृढ़ इच्छा और शुद्ध संकल्प से, मन्त्र के योग से और गुरुदेव की साधना से तुम्हारा यह युवा शरीर मेरे रहने को मिल जायगा। रथ तुम्हारा होगा यह, लेकिन इसका सारथी बनूंगा मैं।

पुरु—और मैं ?

ययाति—तुम अपने मन और बुद्धि के साथ मेरे इस बूढ़े शरीर में रहोगे एक वर्ष तक। ठीक-ठीक समझ लो, तुम्हारी नम्रता और तुम्हारे सीधेपन का मैं असंगत लाभ उठाना नहीं चाहता। सुन लो, तुम्हारे चारों भाइयों में से इसके लिये एक भी तैयार नहीं हुआ था।

पुरु—[हर्ष से उछल कर] मैंने सोच लिया, मैं समझ गया—मैं तैयार हूँ ! पिता-पुत्र के इस सौदे में क्यों घाटा हो सकता है ? पुत्र क्या है ? पिता का विचार, पिता की कामना, पिता की ही कल्पना। जब मेरे जीवन के तमाम वर्षों में पिता का ही दान है तो इस एक वर्ष की गिनती ही क्या है ? पुत्र जब पिता की इच्छा की ही मूर्ति है, तो क्या दाता ही ग्राहक नहीं है ? मैं तैयार हूं, पिता जैसे भी चाहें मेरे यौवन को ले सकते हैं।

ययाति—पिता के लिये किये गये इस त्याग पर तुमने जो अपना विजय-स्तम्भ ऊंचा किया है, वह हजारों शताब्दियों को छेद कर ऊपर निकल जायगा। चलो, महाकाल की मूर्ति के पास, गुरुदेव के सामने इस पवित्र संकल्प के लिये।

[दोनों जाते हैं। दूसरी ओर से लुकते-छिपते शर्मिष्ठाके बेटे-बड़ा और मंझला आते हैं।]

मंझला बेटा—एक तरफ महाराज ने हमें राजकुमार बताकर राजमुकुट दिखाया, दूसरी तरफ हमारी जवानी को शूली पर लटका दिया।

बड़ा बेटा—महाराज की आज्ञा न मानने का जो बड़ा पाप किया हमने, उससे आय-व्यय बराबर हो गया, फिर जैसे के तैसे रह गये। चलो पास से गया तो नहीं कुछ।

मंझला बेटा—वह तो महाराज की कृपा है, जो उन्होंने इतना सस्ता छोड़ रखा है।

बड़ा बेटा—पूरा वर्ष तो नहीं। छै-छै महीने की अपनी ओर

तुम्हारी बारी लगाने का हिसाब जोड़ रहा था मैं, बीच ही में महारानी देवयानी आ धमकीं।

मझला बेटा—[मूछों पर ताव दे घूंसा तान] मैं होता तो! ...कुछ नहीं, तुमने तो सारा तेज गंवा दिया। गीले आटे की तरह भूमि पर फैल गये।

बड़ा बेटा—और क्या करता ?

मंझला बेटा—क्या नहीं कर सकते थे ? जब तुम्हें अपना राजवंश मालूम हो गया था, तो महाराज की साक्षी सामने खड़ी कर देते। तलवार क्या कहीं दूर थी; दो-चार झूठे-सच्चे हाथ दिखाते; बात सध जाती। एक नारी की घुड़की से दुम दबा भाग आये।

बड़ा बेटा—महाराज का कहीं पता भी था ? और तुम अपनी तो कहो, तुम्हें क्या हो गया था ?

मझला बेटा—जो हुआ सो हुआ, आगे के लिये ध्यान रखना पड़ेगा। अगर फिर महारानी देवयानी ने हमारी गर्दन दबोच ली तो ठीक न होगा। हमारे ही नहीं, वह सीधे महाराज के मान-सम्भ्रम पर चोट होगी।

बड़ा बेटा—अभ्यास से सब कुछ हो जाता है। इस समय खटका भी कोई नहीं, चलो। [दीवार पर से ढाल तलवार निकालता है।] अब इन कपड़ों में प्रासाद से बाहर पैर निकालते हुए लज्जा लगती है। क्यों न हो, अब हमारे भीतर राजा उत्पन्न हो गया है। क्या बुरे थे वे दिन, जब अपने स्वरूप का ज्ञान न था। जब चाहे जहां बैठ सकते थे, चाहे जहां जा सकते थे।

मंझला बेटा—अभ्यास कर लो, सब ठीक हो जायगा। [दीवार पर से धनुष-बाण निकाल लेता है।]

बड़ा बेटा—हमारा यह भाई आयु में ही छोटा नहीं, बुद्धि

में भी खोटा ही निकाला। कितनी जल्दी यह महाराज को अपनी जवानी दे देने के लिये तैयार हो गया। लोभी! लालची! मूर्ख! महारानी देवयानी का लड़का सबसे बड़ा है। उसके रहते इसे कैसे मिल जायगा राजसिंहासन? ओट से कितने ही संकेत दिये मैंने इसे! समझ में नहीं आया।

मंझला बेटा—राजमुकुट लेकर गये तो हैं महाराज। यह तो हो नहीं सकता वह कभी झूठ बोलें।

बड़ा बेटा—टपकने लगी न अब तुम्हारे लार?

मंझला बेटा—तुम्हारे भी तो। क्यों नहीं तैयार हो गये थे? पहले तुम्हीं से तो कहा था।

बड़ा बेटा—जाने भी दो, वह भी तो अपना ही छोटा भाई है। लेकिन एक बात बड़ी विचित्र हो जायगी। महाराज का बुढ़ापा लेकर यह तो हमारा पिता जैसा दिखाई देगा और हम उसकी सन्तान! पुकारेंगे क्या कहकर इसे? कौनसा नाता चलेगा इसके साथ साथ?

मंझला बेटा—राजा के साथ किसका नाता चलता है? पिता जी जब तक सिंहासन में रहे तो यह रंग रहे हमारे।

बड़ा बेटा—भगवान से प्रार्थना करनी चाहिये कि पुरु राजा हो जाय। देवयानी के बहकाने पर अगर महाराज मुकुर गये तो उन्हें पिता सिद्ध करना हमारे लिये टेढ़ी खीर हो जायगी। पुरु अगर सिंहासन पर बैठ गया तो फिर क्या बात है? वह तो अपना बना-बनाया भाई है। अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिये हमारे रहन-सहन को ऊंचा करना ही पड़ेगा उसे। लेकिन अभ्यास को क्यों भूले जा रहे हो?

मंझला बेटा—भूलेंगे क्यों? चलिये हो जाय। [कन्धे पर तूणीर बांधता है और हाथ में धनुष-बाण लेता है।]

बड़ा बेटा—[सिर पर थाल रख, खड्ग हाथ में ले सिंहासन

पर बैठ कमर में हाथ रखता है।]

मंझला बेटा—[हाथ उठा कर] महाराज की जय हो ! [नीचे चौकी पर बैठता है।]

बड़ा बेटा—क्यों मन्त्री ? क्या समाचार हैं ?

मंझला बेटा—[उठकर] सब आनन्द-मङ्गल है महाराज। आकाश में सूर्य के तेज से जिस तरह तमाम उल्लुओं का पता नहीं है ऐसे ही आपकी ज्योति से सब शत्रु मुंह छिपाये पड़े हैं। प्रजा आपका न्याय पाकर निर्भय है। लोगों की मति धर्म मे है। इन्द्र आवश्यकता पर पानी बरसाते हैं और किसान समय पर परिश्रम करने में नहीं चूकते। जनता सुखी, सन्तोषी और नीरोग है। [बैठ जाता है।]

बड़ा बेटा—भगवान का धन्यवाद है। और कोई बात तो नहीं ?

मंझला बेटा—महाराज, सीमाओं पर आपके दुर्गों की दीवारें दोहरी व कहीं पर उनकी कोई ईंट ढीली नहीं। दुर्गों में आपके सैनिकों ने राजभक्ति की शपथें खाई हैं और ठीक समय पर प्रजा के करों से भरे राजकोष से उनका वेतन दिया जा रहा है। राज्य के भीतर चारों वर्णों में कोई असन्तोष नहीं। सब ठीक-ठीक अपनी अपनी धुरी पर घूम रहे हैं। ब्राह्मण वेदों के पत्रों पर, क्षत्रिय खड्ग की धारों पर, वैश्य हल की रेखाओं पर और शूद्र झाड़ू की सीकों पर लगन लगाये बैठे हैं।

बड़ा बेटा—बहुत उत्तम। कहीं कोई चिन्ता ?

बड़ा बेटा—नहीं महाराज, कहीं कुछ नहीं। डटे रहिये राज-सिंहासन में। सब खटके ओझल हैं। महारानी देवयानी स्नानागार में मैल छुड़ाकर रूपवती बनने गई हैं और महाराज बुढ़ापा भगा कर जवान बनने। राजमुकुट दांव पर लगा है, देखिये जाकर किस के सिर पर अटकता है। आपकी ढाल दोहरा काम कर रही

हैं।

बड़ा बेटा—और हमारी माता जी कहां हैं ?

मंझला बेटा—माता जी महारानी देवयानी के लिये शिरशोध पीस, पानी गरम कर अब उनके अङ्ग में उबटन लगा रही होंगी।

बड़ा बेटा—धुत्तेरे की ! [सिंहासन पर से उतर आता है।] सारा गुड़ गोबर कर दिया !

मंझला बेटा—बीच ही में अभ्यास छोड़ उखड़ क्यों गये सिंहासन से ?

बड़ा बेटा जमता कैसे ? [सिर पर से ढाल उतार लेता है।]

मंझला बेटा सभासदों की आवश्यकता है ?

बड़ा बेटा—अगर बेसुरा और बेताला न होता तो एक से भी काम चल जाता।

मंझला बेटा—चापलूसी कर तो रहा हूं।

बड़ा बेटा—कहां कर रहे हो ? तुमने तो कह दिया माता जी पानी गरम कर रही हैं। राज-माता कहीं पानी गरम करती हैं।

मंझला बेटा—अच्छा बैठिये—बैठिये तो सही कह दूंगा राज-माता मन्त्रियों के कान गरम कर रही हैं।

बड़ा बेटा—अब हो गया ठण्डा अभ्यास ! [ढाल तलवार जगह पर लटका देता है] फिर देखा जायगा। चलो अब तो हो गया होगा संकल्प। जवान का बूढ़ा हो जाना रात दिन सभी देख रहे हैं, देखना है बूढ़े में कैसी जवानी आ गई !

मंझला बेटा—[धनुष-बाण जगह पर रख कर] देखना है, सागर से निकलकर गंगा किस हिमालय में समा गई।

[दोनों जाते हैं। नेपथ्य में भयानक आवाजें होती हैं। एकदम अंधेरा हो जाता है। बादल गरजते हैं, बिजली कड़कती है और मूसलाधार पानी बरसने की सी आवाज होती है। धीरे-धीरे आवाज संगीत के कई

टुकड़ों में बिखर कर एक रागनी में समा जाती है और अंधेरा कई रंगों से होकर स्वाभाविक रोशनी में आ जाता है। शंख-घंट की ध्वनि। देवयानी के दोनों राजकुमारों का आना]

बड़ा राजकुमार—ह ह हं ! मुझे तो कोई ऐसा शारीरिक बदलाव या चमत्कार नहीं दिखाई पड़ा। छिपकर सभी कुछ तो देख लिया हमने। मैं समझता हूं दोनों ने आपस मे यह कोई मानसिक समझौता किया है।

छोटा राजकुमार—क्यों किस लिये ?

बड़ा राजकुमार—राजनीति बड़ी भयानक वस्तु है। देखते नहीं इतने दिन तक ये दासी के बेटे जो हमें नहलाते, धुलाते, कपड़े पहनाते, खिलाते-पिलाते थे हमारे उपानह साफ करते, तेल रगड़ हमारे शास्त्रों की काई छुड़ाते थे, आखेट मे हांका लगाते, आहत जानवरों को ढूंढ लाते थे। हमारे कवच बांधते, हमारे घोड़ों में जीन कसते, रथ हांकते थे—आज एक ही दिन मे राजकुमार हो गये ! इस बात को क्या तुम कुछ भी भयानक नहीं समझते।

छोटा राजकुमार—लेकिन शर्मिष्ठा है तो राजा की ही लड़की।

बड़ा राजकुमार—पर उसके होंठ सी दिये गये थे और वह दासी रूप में ही यहां आई है। मान लो वह राजा की ही लड़की है और उसके बेटे भी राजकुमार ही हैं। उसका वह सबसे छोटा पुत्र पुरु, वह किस दिन मुझ से बढ़ गया ! ये शर्मिष्ठा पर दयालु हुये हैं। यह यौवन का संकल्प कुछ नहीं, हमारा अधिकार छीन लेने के लिये महाराज की चाल है।

छोटा राजकुमार—सन्देह से बात छूटी तो नहीं है। दोनों के दिखाव में कोई नयापन नहीं उभरा है। यह कैसा संकल्प हुआ ? एक वही पुरु है, दूसरे वही महाराज ययाति। पुरु को जो राजसी

कपड़े और राजमुकुट पहनाकर सजा दिया गया है, वह संकल्प से पहले की बात है।

बड़ा राजकुमार—कैसा भयानक षड़यन्त्र इन दोनों ने मिलकर रचा है और अब इसका पहला शिकार होंगे हम।

छोटा राजकुमार—महाराज ने इस समझौते के लिये हम से कहा तो था।

बड़ा राजकुमार—वह एक चाल थी और इस चालाकी से कही गई थी जिससे हम उसे किसी तरह स्वीकार न करते।

छोटा राजकुमार—एक बात तो यह निश्चय ही है, राजमुकुट पुरु को पहनाकर तुम्हारा अधिकार छीन लिया गया।

बड़ा राजकुमार—अगर यह बात यहीं पर समाप्त हो जाती तो कोई घाटा न था। मैं तो समझता हूं, पुत्र होने के नाते अगर पुराने महाराज ने अगर हमें शूली पर न लटकाया, तो आजन्म कारागार तो कहीं गया ही नहीं। नये महाराज का ध्यान करता हूँ तो पैर के नीचे की सारी वसुन्धरा खिसकती हुई जान पड़ती है।

छोटा राजकुमार—मैं भी यही समझता हूं। हमारी मातृ ने शर्मिष्ठा के ऊपर जो अत्याचार किये हैं, हमारी खाल में से वह ब्याज-सहित खींच लिये जावेंगे, यह साफ दिखाई देता है।

बड़ा राजकुमार—लुक-छिप कर कोई घड़ी ही रह सकते हैं यहां, अधिक इस वायुमण्डल में अनुकूलता नहीं है हमारे लिये। चलो, कहीं दूर प्रदेश को भाग चलें जहां महाराज का सिक्का न चलता हो। कुल के लिये गांव, गांव के लिये देश और अपने सिर के लिये देश को छोड़ जाने में भलाई ही भलाई है। [जाने लगता है] चलो।

छोटा राजकुमार—[उसका हाथ खींचकर] ठहरो तो सही।

बड़ा राजकुमार—पागल हो गये हो क्या ? इस सिर का

राजमुकुट जब दूसरे की खोपड़ी पर जम गया, तो क्या समझते हो यह खोपड़ी हमारे कन्धों पर चिपकी रहेगी ? [जीभ से तालू पर चोट कर] ट्च ! कदापि नहीं ! वो सुन्हरे दिन अब डूब गए हमारे इस राजभवन के भीतर ! अब तो यहां काल रात्रि है। भाग चलो। प्राणों को प्यार क्यों नहीं करते ?

छोटा राजकुमार—माता जी की हम दो आंखें। कम से कम उनसे कुछ कह तो जाना चाहिये।

बड़ा राजकुमार—अवसर मिलेगा तो कहेंगे, नहीं तो किसी से कहला देंगे। अभी देर नहीं हुई है। अभी इन पुराने प्रहरियों को नये महाराज का पता नहीं है। आते ही होंगे अब वह इधर। तब किसी की आंख में धूल झोक कर इस राजमहल के बाहर कूद पड़ना असम्भव हो जायगा।

[दोनों एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर भाग जाते हैं। दूसरी तरफ से बिखरे बालों में दौड़ती-घबराती हुई देवयानी आती है। उसके कपड़े और आभूषण भी अस्त-व्यस्त हैं। उसके पीछे राजसी वेश में राजमुकुट पहने पुरु आता है और देवयानी के भूमि पर लटकते हुए अञ्चल को पकड़ लेता है।]

देवयानी—छोड़ ! छोड़ ! चांडाल ! तेरा ऐसा साहस ! [अञ्चल छुड़ा लेती है]

पुरु—प्रियतमे ! प्रेयसि ! बात तो सुनो, मैं तुम्हारा ययाति हूं। मेरे सबसे छोटे पुत्र ने मुझे अपना यौवन दे दिया। मैं फिर नई आशा, नई ज्योति और नए फूलों से तुम्हारे रूप की पूजा करने योग्य हो गया।

देवयानी—मुझे धोखा देता है पापी ! तू तो पुरु है !

पुरु—केवल पुरु का बाहरी पिंजर ! भीतर से जो पुरुष है, जो मन और बुद्धि है, जो कामना है, वह तुम्हारे प्रियतम ययाति की

ही है। हं हं हं ! बात तो समझो, तुम बड़ी भोली तो न थीं। हाथ पकड़ लेने दो मुझे, तब अवश्य तुम मेरे प्राणों की तृषा को पहचान लोगी। [उसका हाथ पकड़ना चाहता है]

देवयानी—[दीवार पर से तलवार निकाल कर] ऐसा नङ्गा और निर्लज्ज, तुझे कभी नहीं देखा था। तू आसव पीकर आया है और नशे मे बहक रहा है। दासी के बेटे ! यह राजमुकुट और राजसी कपड़े कहां से पहन लिये तूने ?

पुरु—प्रभु मैं, प्रभुता मेरी ! और कहां से पहन लिये ? हं-हं-हं ! पगली हो तुम, संकल्प के समय उपस्थित नहीं थीं, इसी से ऐसा कहती हो। चलो, चलकर गुरुदेव से पूछ लो। [उसका हाथ पकड़ कर ले जाना चाहता है]

देवयानी—[तलवार खींच कर] नरक के कीड़े ! सावधान ! अगर तूने अपने पाप की छूत से मुझे अपवित्र किया तो अभी तुझे सैकड़ों टुकड़ों में बांट दूंगी।

पुरु—इस हाथ की आज छुत मानने लगी हो तुम ? सुन्दरी ! अंधे कुए के भीतर मौत और जीवन के बीच में छटपटाये हुये तुमने जिस हाथ को पकड़ा था, इसे भूल गईं ? उसकी मिट्टी चाहे न हो यह, चेतना वही है इसके भीतर, चलो पूछ लो गुरुदेव से।

देवयानी—तुमने जादू से महाराज का न्याय भुला दिया, घूस से राजगुरु का धर्म मोल ले लिया और बलात्कार से क्या तू नारी का सतीत्व छीन लेना चाहता है ? कामी ! सावधान, अगर एक पग भी आगे बढ़ा तो अपने ही रक्त में नहावेगा।

पुरु—[दर्पण के पास जाकर अपने प्रतिबिम्ब को देखता है] बिल्कुल पुरु सा दिखाई दे रहा हूं, इसी से क्यों न तुम्हारे भ्रम पैदा हो ? अरे इस बाहरी बर्तन को क्या देखती हो, जो उसमें प्यास भरी हुई, है उसे पहचानो। उसकी ओट में जो आवेश और प्रेम है, वह

तुम्हारे ही ययाति का है। तुम्हारे सहयोग से, योग की साधना के लिए मैं फिर यौवन में लौट आया हूं।

देवयानी—रह तो सही, मैं अभी महाराज के ऊपर चलाये गये तेरे मोहन मन्त्र को उखाड़ फेंकती हूँ। चल महाराज के पास।

पुरु—हं-हं-हं! कौन है महाराज? [सिंहासन पर बैठ जाता है] महाराज! और किस महाराज के पास ले जाती हो? मैं ही हूं महाराज। ययाति मैं ही हूँ। [मोछों पर ताव देता है] और अगर किसी दूसरे को ययाति समझती हो, तो उसे मेर पास ले आओ। तुम्हारे आग्रह पर अगर वह आने को राजी न हो, तो कह देना उसे महाराज ने बुलाया है।

देवयानी—अधम नारकी! अभी अगर तुझे पागल हाथी के पैरों के नीचे न रौंदा दिया तो मैं दैत्यगुरु शुक्राचार्य की दुहिता नहीं! [पैर पटक कर चली जाती है]

पुरु—[सिंहासन से उतर कर दर्पण के पास जा उसमे अपनी छाया देख हंसता है] हं-हं-हं! [दूर से शर्मिष्ठा को आता हुआ देखकर] तुम्हें कोई सन्देह क्यों हो?

शर्मिष्ठा—[जलता हुआ धूमपात्र लेकर देवयानी को ढूंढती हुई आती है। पुरु का राजवेश देख चौंक कर] हैं, ये राजसी वस्त्राभूषण, यह राजमुकुट किसने पहना दिया तुम्हें?

पुरु—कौन पहनायेगा? सुपुत्र का त्याग और कौन? और जो इस शरीर के फटे कपड़ों को बदल कर यह नई जवानी पहनी है, उसका ध्यान क्यों नहीं होता तुम्हें?

शर्मिष्ठा—महारानी देवयानी कहां गयीं? उनके नये धुले हुए बालों को सुखाने और सुवासित करने के लिये यह धूम लेकर उन्हें ढूंढ रही हूं।

पुरु—[बड़े प्रेम से शर्मिष्ठा के कन्धे पर हाथ रख देता है]

शर्मिष्ठा—[पुरु का हाथ हटा कर] हैं, यह कैसी अशुद्ध भावना से तुमने मेरे कन्धे पर हाथ रख लिया ?

पुरु—पति और पत्नि के बीच में कौनसी अशुद्ध भावना हो सकती है ?

शर्मिष्ठा—हैं ! तुम आज कैसे बोल रहे हो ?

पुरु—गा रहा हूं, यौवन के बसन्त की फिर नई रागिनी ! प्रिये !

शर्मिष्ठा—[देर हट कर] तुम्हारे शरीर में कैसी कालिमा, तुम्हारी दृष्टि में कैसा विष और तुम्हारी कामना में कैसे पाप की परछाई है यह ?

पुरु—कहां की कालिमा ? कैसी दृष्टि, और किसका पाप ?

शर्मिष्ठा—तुम्हारी पुरु, और किसकी ? तुम पागल हो गये हो ?

पुरु—हं-हं-हं ! मैं पुरु कहां हूं ?

शर्मिष्ठा—तो क्या मैं पागल हो गई हूं ?

पुरु—नहीं, पागल कोई भी नहीं है। केवल बाहर के ही परदे पर धोखा खाकर भीतर का राग नहीं समझ रही हो। अन्त में मेरे सब से छोटे पुत्र पुरु ने मेरा कहना मान लिया। क्या प्रशंसा करूं मैं उसके बलिदान की। ऐसे पुत्र की माता बनकर तुम भी धन्य हुई हो।

शर्मिष्ठा—[भयभीत होकर भूम्रपात्र लिए इधर-उधर दौड़ती है] अरे ! क्या हो गया इसे, क्या हो गया ? यह कौन है ?

पुरु—[उसके पीछे-पीछे दौड़कर] यह बाहरी चित्र पुरु का हो सकता है, लेकिन इसके भीतर से बोलने वाली यह सांस मेरी ही है, यह कामना मेरी ही है, यह प्यास मेरी ही है। तुम्हारे ययाति की, तुम्हारे पति की, तुम्हारे प्रियतम की !

शर्मिष्ठा—कैसा प्रियतम ?

पुरु—अब भी देवयानी का भय सता रहा है तुम्हें ? यौवन की आंधी अपने मन में बांधकर मैं उसमे निर्भय हो चुका । तुम्हारे ही लिए तो मैंने अपने अहङ्कार के लिए यह नई अवस्था ढूंढी है । अब तुम देवयानी से बढ़कर नहीं तो बराबर अवश्य हो । चलो, अभी तुम्हें राजसी वेश में बदल दूंगा, प्रियतमे !

शर्मिष्ठा—आकाश की एक-एक किरण, धरती का एक-एक कण, राजभवन की एक-एक ईंट आज यह कैसा हलाहल सम्बोधन तुम्हारे मुख से सुन रहे हैं । मैं धरती में जीवित ही गड़ क्यों नहीं जाती ? [रोती है] किस दृष्टि से तुम माता को देख रहे हो ? चन्द्र-सूर्य और ग्रह-तारा अपने स्थान छोड़ देंगे । पुरु ! [पुरु के दोनों हाथ पकड़ उसे झकझोरती है] पुरु ! बेटा । तुम्हें क्या हो गया ? किसी ने तुम पर जादू कर दिया या कुछ खिला दिया ?

पुरु—जन्म भर की दासता से तुम्हारा मस्तिष्क अपनी समझ खो चुका । कितनी बार समझाऊं कि मैं ययाति हूं । मैं अपना बुढ़ापा पुरु को देकर उसके यौवन से चिल्ला रहा हूं । जाओ, जाकर पुरु से पूछ लो ।

शर्मिष्ठा—[निराश होकर] पुरु को पूछ लूं ! [इधर-उधर पागलों-सी भटक दीवारों पर हाथ मारती है] पुरु ?...पुरु ?...कहां है पुरु ? [पुरु की ओर बढ़कर] तुम्हीं तो हो पुरु !

पुरु—[डांट कर] नहीं, मैं महाराज हूं । [जाकर सिंहासन में बैठता है]

शर्मिष्ठा—सिंहासन पर बैठकर महाराज नहीं हो सकते तुम, राजमुकुट पहन कर ही तुम से कोई महाराज कहेगा ?

पुरु—मेरे प्रेम को पहचानो ।

शर्मिष्ठा—सभी तुम्हारे इस प्रेम को देख कर कहेंगे, माता

की जिस छाती पर यह पाला गया है, उस पर यह कैसी विषैली दृष्टि गड़ा रहा है ! धिक्कार है, इस पर धिक्कार !

[ययाति के साथ देवयानी बातें करती हुई आती है]

ययाति—हां महारानी जी इसमें कुछ भी संशय नहीं है, हम दोनों ने आपस में अपनी-अपनी काया को बदला है ।

शर्मिष्ठा और देवयानी—[आश्चर्य से एक क्षण के लिये मानो पत्थर की मूर्ति बन जाती हैं] हैं !

ययाति—हां, पुराने पिंजरे में नया पक्षी !

पुरु—और नए पात्र में पुरानी मदिरा ! बड़ी देर से समझा रहा हूं, लेकिन स्त्री की बुद्धि, अब समझ में आवे तब न ? [सिंहासन से उतर आता है]

देवयानी [पैर पटककर] नहीं कदापि नहीं । सरासर धोखा ! छल ! कपट ! प्रपञ्च ! शर्मिष्ठे ! तू क्या समझती है ?

शर्मिष्ठा—अगर बिल्कुल ऐसा ही नहीं तो माया ! मदिरा ! जादू-टोना या पागलपन ! [धूम्रपान के धुएं पर देवयानी के केश रखती है]

देवयानी—[अपने केश हटा लेती है । ययाति से] महाराज !

ययाति—[पुरु की ओर इशारा करता है] राजमुकुट को देखो ।

देवयानी—शर्मिष्ठे ! तू देख रही है ?

शर्मिष्ठा—राजमुकुट बाहरी धोखा है, उसे क्यों देखूं ? मैं उस मुख को देख रही हूं जिसे मैंने दूध पिलाया है ।

देवयानी—देख, पक्षपात मत करना । सम्पत्ति और विपत्ति दो बहिनें हैं, धर्म जिसके साथ है, उसी का मुंह उजला है । बता कौन है महाराज ?

शर्मिष्ठा—जो हैं वही ! [ययाति की ओर हाथ उठाती है]

ययाति—नहीं, महाराज ययाति के इस बुढ़ापे के भीतर से जो बोल रहा है, वह मैं पुरु हूं।

शर्मिष्ठा—कभी नहीं ! बोलने वाला बदला है तो बोली क्यों नहीं बदली !

देवयानी—तू धन्य है शर्मिष्ठे ! तूने स्वार्थ को छोड़ कर सत्य की बांह पकड़ी, आज पहचानी मैंने तेरे हृदय की निर्मलता। इस झगड़े पर एकमत होने से ही आज हम दोनों के मन मिलकर एक हुए हैं। [शर्मिष्ठा के गले में हाथ डालती है] हमारे वर्षों का बैर आज मिट गया !

पुरु—जीवन भर तुम्हारे बीच में मेल कराने की जी तोड़ चेष्टा की, एक दिन के लिये भी तुम एक न हो सकीं, आज अचानक तुम एक-दूसरे की सगी हो गईं। [शर्मिष्ठा से] प्रिये तुम दोनों मित्र हो गईं और मैं शत्रु हो गया !

शर्मिष्ठा—चुप रहो कुलांगार ! मैं लज्जित हूं, मैंने नौ महीने तुम्हें पेट में रखा।

[धूम्रपान के धुएं में फिर देवयानी के बाल उठाती है।]

देवयानी—रहने दो बहन ! [फर अपने बाल हटा लेती है।] तुम्हारा प्रायश्चित हो चुका। अब तुम किसी की दासी न रहीं। अब एक क्षण के लिये भी मैं तुम्हें इस वेश में नहीं देख सकती। मेरे और तुम्हारे बीच के सारे अन्तर समाप्त हो चुके आज। चलो, सबसे पहले तुम्हें बिल्कुल अपना जैसा बनाऊंगी तभी इनके षडयन्त्र तोड़ डालेंगी !

[दोनों एक दूसरे के गले में हाथ डालकर चली जाती हैं।]

पुरु—[सिर से अपना राजमुकुट उतार कर] सारे झगड़े की जड़ यही राजमुकुट है और तुम भी कितने भोले हो। यौवन के संकल्प से पहले यह मुकुट मैंने तुम्हें पहनाया था। उसके बाद हम

दोनों की चेतना एक दूसरे की काया में बदल गई—मुकुट को भी तो बदल जाना चाहिये था। लो यह तुम्हारी ही तो वस्तु है।

ययाति—मुझे इसका कोई लालच नहीं है महाराज।

पुरु—मुझे तो अपने कर्तव्य का पालन करना है न ? संसार को देखकर भी यह तुम्हें ही पहनाना पड़ गया। बड़ा विचित्र है यह। भीतरी सत्य को कोई नहीं समझ पाता, सब बाहरी बनावट पर रीझते हैं। यह भेद कहां तक किसी को समझाते फिरेंगे, फिर कौन समझ सकता है ? इस लिए हम जैसे दिखाई दे रहे हैं, वैसे ही क्यों न समझे जायं ? [ययाति को मुकुट पहनाकर] महाराज ययाति की जय हो ?

ययाति—[चौंककर] यह क्या महाराज ?

पुरु—यही, ऐसा ही। सत्य छिपना चाहता है, उसे छिपा दीजिए महाराज ! सिंहासन में विराजिए, आप ही महाराज हों।

ययाति—और आप ? [सिंहासन में बैठता है।]

पुरु—जो हूं वह नहीं, जैसा दिखाई दे रहा हूं वह। आप नहीं मुझ से तुम कहिए पुरु कहिए। नहीं तो देखता हूं सारी प्रजा में क्रांति फैल जायगी। रानियों पर ही अभी हमने इस भेद को खोला था, देखा उसका कैसा प्रभाव पड़ा ?

ययाति—ऐसे भी बात कैसे सुलझेगी ?

पुरु—सुलझ जायगी। मैं कहीं को चल दूंगा।

ययाति—एक अजीब नाटक का पात्र तुमने मुझे बना दिया महा—

पुरु—संभलिये, महाराज आप स्वयं हैं।

ययाति—पुरु ! तुमने पुरु ! एक अजीब नाटक का पात्र, तुमने मुझे बना दिया पुरु !

पुरु—मंत्री और सेनापति दोनों चले आ रहे हैं। तुरन्त ही

दोनों पुत्रों को कारागार में डालने की इन्हें आज्ञा दीजिये।

[मन्त्री और सेनापति का प्रवेश]

दोनों—महाराज की जय हो !

ययाति—मन्त्री और सेनापति ! तुम्हें बड़े आवश्यक और गुप्त काम के लिए अभी बुलाया गया है। अभी जाकर महारानी देवयानी और शर्मिष्ठा के पुत्रों को पकड़कर कारागार में बन्द कर दो।

दोनों—[हाथ जोड़कर] महाराज ? क्यों ?

ययाति—यही राजनीति है। अभी कुछ न पूछो, समय आने पर तुम्हें इसका रहस्य जान पड़ेगा। जाओ, बड़ी चतुराई के साथ इस राजाज्ञा को रूप दो। चुपचाप, प्रजा में कोई गड़बड़ न हो, धीरज को न खोते हुए बड़ी शीघ्रता के साथ।

दोनों—जो आज्ञा महाराज। [दोनों चुपचाप जाने लगते हैं। चतुराई से तुरन्त ही लौटकर पुरु के दोनों हाथ पकड़ लेते हैं।]

ययाति—नहीं, नहीं, इन्हें नहीं।

मंत्री—यह भी तो शर्मिष्ठा के पुत्र हैं।

ययाति—इन्हें छोड़कर शेष जो चार हैं।

दोनों—[पुरु के हाथ छोड़ उसे हाथ जोड़ते हैं।] अपराध क्षमा हो।

ययाति—कोई बात नहीं। [हंसता है।] हं-हं-हं !

दोनों—[अभिवादन कर चले जाते हैं।]

पुरु—ज्ञान और कर्म रूपिणी मेरी ये दो शक्तियां जब मिली तो मैं इनकी पहचान से बाहर होकर इनका शत्रु हो गया ! अब पुत्रों के बन्दी होने के समाचार सुनते ही ये सारे राजभवन में भूचाल उठा देंगी और मेरा यहां रहना कठिन कर देंगी। मुझे कहीं चल देना चाहिये।

ययाति—और मैं यहीं रहूँगा।

पुरु—आप सम्राट् हैं। राज्य, सिंहासन, मुकुट सब आपके। विधि-विधान के लिए मंत्री और परिषद्, आज्ञा-अनुशासन के लिए सेना तथा दास-दासी, व्यय के लिए कोष और राजस्व, सब आपके हैं। केवल इन चार भाइयों से उपद्रव की आशंका थी, उनको कारागार में बन्द होते अब क्या देर है ? आ गए गुरुदेव ! जय हो गुरुदेव की !

गुरुदेव—[आकर] महाराज की भी तो !

पुरु—[हाथों से नहीं कह, सिंहासन पर ययाति की ओर संकेत करता है] महाराज वह हैं !

गुरुदेव—[चौंककर] क्यों ? क्यों ?

पुरु—गुरुदेव ! सत्य को जानते हैं तो छिपा दीजिए उसे। हम क्या करें, कोई विश्वास नहीं कर रहा है, इसी से हम पुरानी लकीर पर लौट आए। आप भी उसी लीक पर चलें। यह भयानक सत्य छिपा दीजिए। महाराज सिंहासन में विराजमान हैं। महाराज की जय हो।

गुरुदेव—[आशीर्वाद देकर] जय हो !

पुरु—गुरुदेव, मैं आखेट के लिये चैत्ररथ वन को जाऊंगा, आज ही। मेरे साथ जो कुछ जा सकता है, उस सबका प्रबन्ध आपको करना होगा। आप भी मेरे साथ चलेंगे।

गुरुदेव—जीवहिंसा में राजगुरु का क्या काम ? किसी पुराने शिकारी को साथ लीजिये।

पुरु—नहीं, आज तो गुरुदेव को ही साथ ले जाना है। कामना नाम की एक बड़ी पुरानी राक्षसी है। मैं उसी का आखेट करने जा रहा हूँ। आप जानते हैं उसे ?

गुरुदेव—तभी तो मैं कहता था—अपना पुराना बैर भुलाकर महारानी देवयानी बड़े प्रेम से महारानी शर्मिष्ठा का शृङ्गार कर रही

है। निश्चय ही वे आपके साथ चैत्ररथ वन की संगिनी हो रही हैं।

पुरु—नहीं गुरुदेव, उन दोनों को आज समान शत्रु मिला है, इसी से उनकी मित्रता हुई है। हमारे इस काया-पलट का सत्य सभी से छिपा दिया गया है। उन दोनों में से कोई एक भी मेरे साथ न जायेगा। पांच राज-नटियां जावेंगी, विलास के पूरे सामान के साथ।

गुरुदेव—राजनर्तकियां ? मैं तो यज्ञ की सामग्री को जानता हूँ—कुश, समिधा, हव्य, कव्य, स्रुवा, प्रोक्षणी ! विलास के सामान को मैं क्या पहचानूं ?

पुरु—गुरुदेव, आपका यह पाखण्ड चैत्ररथ वन में टूट जायगा। यज्ञ क्या है ? देवताओं की तृप्ति ! देवता क्या हैं ? पंचभूतों के अधिष्ठान ! पंचभूत क्या हैं ? पांचों इन्द्रियां ! इसलिये क्यों इन्द्रियों की तृप्ति यज्ञ नहीं है ? इन्द्रियों की सुख-साधना में यदि हम भगवान की ही तृप्ति देखते हैं तो वह यज्ञ क्यों नहीं ? और यदि भावना को इधर-उधर भटका कर हमने भगवान् के लिये कोरे हाथ जोड़ रखे हैं तो हमसे बड़ा पाखण्डी और कौन है ? हम अन्धे हैं और भगवान को भी अन्धा ही समझते हैं।

गुरुदेव—यह नये रक्त में पुराना अनुभव बोल रहा है। ज्ञान और कर्म को एक करने की बात है। वह एकता क्या है, जैसा विचारो वही करो। ज्ञान और कर्म किससे बांधे जाते हैं ? वे बांधे जाते हैं मन्त्र से। मन्त्र क्या है ? वाणी। जैसा विचारो, वही कहो और वही करो। यही है स्थूल और सूक्ष्म का जोड़, प्रत्यक्ष और आदर्श का साम्य, भीतर-बाहर की एकता, शरीर और आत्मा की संधि !

पुरु—गुरुदेव की जय हो। राजनर्त्तकियों को पहचानते हैं आप ?

राजगुरु—नहीं [बदलकर] हां।

पुरु—उनमें से पांच छांट लीजिये। सबसे पहले वही जावेंगी, लेकिन वे पांचों मेरी ओट में रहेंगी। अपनी सुख सुविधा के लिये जो

कुछ वह कहेंगी, वह सब जायेगा। गुरुदेव, शीघ्रता करनी होगी, आज ही प्रस्थान होगा।

गुरुदेव—आज ही ? मुहूर्त तो देखना पड़ेगा।

पुरु—क्यों नहीं ? यौवन के वर्ष की गिनती के लिए एक जल की घड़ी भी वहां ले जानी पड़ेगी।

गुरुदेव—ऐसा ही होगा। [जाता है।]

देवयानी—[दूसरी ओर से आकर ययाति के सिर पर राज-मुकुट देख चौंकती है।] हैं यह क्या देखती हूं ! सिंहासन पर फिर आप और आपके सिर पर राजमुकुट !

ययाति—[हंसकर] हं-ह-हं ! तुम्हारी सहनशीलता की परीक्षा की थी, एक लाभ सहज ही उससे हो गया—तुम दोनों के जन्म का बैर चुटकियों में उड़ गया।

देवयानी—[दोनों को देखकर] मैं पूछती हूं, महाराज कौन है ?

ययाति—यदि नाम से नहीं पहिचान सकतीं तो रूप से पहिचानो मैं ही महाराज हूं।

देवयानी—तब मेरा अभियोग और भी दृढ़ होता है। दुहाई है, महाराज की दुहाई है।

ययाति—क्या है तुम्हारा अभियोग ?

देवयानी—इस कुलांगार के विरुद्ध ! जिसकी आपने यह शोभा बढ़ाई है।

ययाति—तुम भी तो शर्मिष्ठा का शृंगार करने ले गई हो। उनके बेटे पुरु के विरुद्ध अभियोग खड़ा करने में वह तुमसे रूठ तो न जावेंगी ? सोच लो।

देवयानी—कदापि नहीं ! उसे भी इसके विरुद्ध यही आरोप है। महाराज आपको दूध का दूध और पानी का पानी करना ही पड़ेगा। अगर इसे दण्ड नहीं दिया गया, आपने पक्षपात किया तो

मैं अनशन कर प्राण त्याग दूंगी ।

ययाति—क्या अभियोग है तुम्हारा ?

देवयानी—इस पतित और कुचाली ने मुझ पर कुदृष्टि की है । बड़े-बड़े शूरवीर प्रतापी और पंडित, जिसके सामने अपनी छाया समेटकर चलते हैं, उस आपकी साम्राज्ञी को इसने अपने पाप-स्पर्श से कलंकित किया है । बड़े-बड़े देवता जिस महान् शुक्राचार्य की विद्या से रात दिन भयभीत रहते हैं, उसकी कन्या के प्रति इसने बड़े अश्लील वचन कहे । मैंने मूली की जड़ की भांति इसकी जीभ नहीं उखाड़ ली । पर आर्यावर्त्त के महाराज के सामने मैं न्याय की भिखारिणी हूं । महारानी की स्थिति से नहीं, एक साधारण नागरिक के रूप में ! [घुटने टेक अंचल फैलाती है ।]

ययाति—क्यों पुरु ! क्या यह स्त्री सच बोल रही है ?

गुरुदेव—[ताड़पत्र लेकर आते हैं ।] चैत्ररथ जाने के लिए यह सारी व्यवस्था की गई है । इसपर राजाज्ञा लिख दीजिये महाराज ।

ययाति—[ताड़पत्र लेकर] ठहर जाइए गुरुदेव ! एक अपराधी के देश निकाले की आज्ञा भी दर्ज होगी इसी पत्र में । इसी चैत्ररथ वन में उसे भी बन्दी किया जायगा ।

गुरुदेव—वह कौन है महाराज ?

ययाति—[देवयानी से छिपाकर होठों पर हाथ रख गुरुदेव से इशारा करता है ।] अभी ज्ञात हो जायगा । [पुरु से] क्यों तुम्हारे पास कोई उत्तर नहीं ?

देवयानी—देवयानी झूंठ नहीं बोलती महाराज ।

ययाति—तुम्हारे मौन को तुम्हारे अपराध की स्वीकृति मान लिया जाय ?

पुरु—[चुप ही रहता है]

ययाति—मैंने तुम्हें विनयी, सुशील और चरित्रवान समझ कर तुम्हारा पद बढ़ाया था, लेकिन तुम्हें राजमद चढ़ गया । गुरुदेव

इसे पकड़कर ले जाओ । [ताड़पत्र पर लिखता है ।] इसे चैत्ररथ वन में एक वर्ष का देश-निकाला दिया जाता है । यदि इसने अपने पश्चाताप और सदाचरण से पवित्रता प्राप्त की तो ठीक ही है नहीं तो यह अवधि और भी अधिक बढ़ा दी जायगी। [गुरुदेव को पत्र देता है ।] हथकड़ियों और प्रहरियों के घेरे में सावधानी से यह वहां पहुँचाया जायगा । [फिर देवयानी की ओट में होठों पर हाथ रखकर गुरुदेव को इशारा करता है ।]

गुरुदेव—[पुरु का हाथ पकड़कर ले जाते हैं ।]

ययाति—तुम संतुष्ट हुई हो मेरे न्याय से ?

शर्मिष्ठा—[नेपथ्य में रोती हुई।] महारानी ! महारानी ! [बिल्कुल देवयानी के से वस्त्राभूषण पहनकर आती है ! बड़ा अन्धेर हो गया ।

देवयानी—क्या हो गया ?

शर्मिष्ठा—पुत्र बंदी—

देवयानी—उसका अपराध था । उसने मातृत्व को कलंक लगाया । उसे उचित ही दंड मिला ।

शर्मिष्ठा—तुम किसके लिए कह रही हो ?

देवयानी—पुरु के लिए ।

शर्मिष्ठा—पुरु के लिए नहीं कह रही हूँ । उसे छोड़कर अपने और तुम्हारे चारों पुत्रों के लिए ।

देवयानी—कहां हैं वे ?

शर्मिष्ठा—[रोती हुई] कह तो रही हूं । कारागार में बन्द कर दिए गए हैं महाराज की आज्ञा से ।

देवयानी—किस अपराध पर ?

शर्मिष्ठा—मैं नहीं जानती । [महाराज से] महाराज उनका अपराध क्या है ?

ययाति—ओ हो, आप हैं महारानी शर्मिष्ठा जी ? महारानी देवयानी ने आज तुम्हें बिल्कुल अपने में ही मिला लिया । पदवी में ही नहीं, वस्त्राभूषणों के रंग-रूप में भी । बधाई क्यों न हो आपको ।

देवयानी—[क्रोध के साथ] हम पूछती है, हमारे पुत्रों का क्या अपराध है ?

ययाति—अपराध ? राजद्रोह ! अराजकता ! उनके मुक्त जीवन से प्रजा में अशान्ति का भय था, इसलिए वे बन्दी कर लिए गए ।

दोनों—अन्याय ! घोर अन्याय !

शर्मिष्ठा—हमारे पुत्र राजभक्त हैं ।

देवयानी—आश्चर्य है, पिता अपने ऐसे पुत्रों को कारागार में डाल दे ।

ययाति—न्याय की आंखों में पिता-पुत्र का कोई सम्बन्ध नहीं ठहरता । तुमने देखा नही, पुरु को अभी देश निकाला दे चुका हूं ? क्या वह मेरा पुत्र नहीं है ?

देवयानी—[देवयानी सिर पीटकर रोती है ।] हे भगवान् ! क्या होगा अब ?

शर्मिष्ठा—महाराज, उन्हें क्षमा कीजिए । [रोती है ।]

ययाति—यह मेरा विलास-भवन है और कभी-कभी मैं इसमें न्याय और विधान का दंड भी हाथ में लेता हूं । रोने-धोने से इससे कलुषित कर देने का तुम्हें कोई अधिकार नहीं ।

देवयानी—पुत्र की ममता क्या वस्तु है, छाती पर लोहे का कवच बांधने वाले महाराज, आप नहीं जान सकते ।

शर्मिष्ठा—अपने रक्त-मांश से जो पुत्र की रचना करती है, यह पीड़ा उस उस माता से पूछो ।

ययाति—पूरु, इन्हीं आंसुओं से तुमने उसके देश-निकाले का रास्ता बनाया—क्या वह तुम्हारा पुत्र न था । शर्मिष्ठा तो अब

तुम्हारी सगी हैं न ? तुम दोनों की दृष्टि में वह एक अपराधी था तो मुझ एक की दृष्टि में वे चारों अपराधी हैं। कोई रोक नहीं सकता मुझे मेरे न्याय से। इन आंसुओं में मैं न बह जाऊंगा।

देवयानी—शर्मिष्ठे ! कदाचित् इसीलिए हम दोनों आज एक-एक से ग्यारह हुई हैं। देखें कौन सी शक्ति है, जो हमारे निर्दोष पुत्रों को कारागार मे डाल सकती है ? हम प्रजा में विद्रोह बोकर उसे दो हिस्सों में बांट देंगी।

शर्मिष्ठा—चलो।

[वेगपूर्वक दोनों चली जाती हैं। नेपथ्य में सीढ़ियों पर उतरने की ध्वनियां।]

ययाति—[सिंहासन से नीचे उतर कमरे में टहलता है, दर्पण में मुख देखता है। दासी ! [दासी आती है।] महारानियां किधर गईं ?

दासी—शायद पुराने प्रासादों को।

ययाति—ठीक है। बाहर जाकर सब प्रहरियों से कह दो—दोनों महारानियों के लिये आज से इस राजभवन के द्वार बंद हो जावेंगे। वे दोनों पुराने भवनों में ही रहेंगी।

दासी—जो आज्ञा। [हाथ जोड़कर चली जाती है।]

[पृष्ठ संगीत, द्वार ढकने की भारी ध्वनि]

(यवनिका)

दूसरा अंक

[चैत्ररथ वन में एक गुफा। उसमें पांच द्वार हैं। बीच में एक विशाल पेड़ के तने के चारों ओर एक चबूतरा है। उसमें एक कामदेव की पत्थर की मूर्ति स्थापित है। पेड़ से कई बेलें नीचे को लटक रही हैं। एक तरफ कुछ हरी घनी झाड़ियां हैं। दो खड्गधारी प्रहरी अपने हाथों में पुरु की हथ-कड़ियों की रस्सियां पकड़े हुए गुरुदेव के साथ आते हैं। पुरु की आंखों में पट्टियां बंधी हैं। गुरुदेव के एक हाथ में जल की घड़ी है, दूसरे में एक घंटा।]

गुरुदेव – प्रहरियों, हम चैत्ररथ वन में आ गये। तुम्हारा कर्त्तव्य यहां पर समाप्त हो गया और अब मेरा आरम्भ होता है, यही वह पुरानी और प्रसिद्ध गुफा है। राजवंश के भयानक अपराधी यहां लाकर रक्खे जाते हैं। तुम अब राजधानी को लौट जा सकते हो। महाराज से कह देना, बन्दी वहां कुशलपूर्वक पहुँच गया।

दोनों—जो आज्ञा। [अभिवादन कर चले जाते हैं।] महाराज !

गुरुदेव—नाटक की एक भूमिका समाप्त हो गई महाराज ! अब दूसरी का आरम्भ है।

पुरु—गुरुदेव, क्या कह दिया आपने 'महाराज' ?

गुरुदेव—हां महाराज। हां यही शब्द तो इस नई भूमिका का 'बीजमंत्र' है। अब इस एकान्त गुफा में कोई नहीं। आपका भ्रम मिटाने के लिए मैं आपके आंखों की पट्टी और हाथों की हथकड़ियां दोनों खोल देता हूं। [पट्टी और हथकड़ी खोल देता है।]

पुरु—[पट्टी को हाथ में लेता है।] गुरुदेव कहीं भाग न जाऊं,

इसलिए हथकड़ी की सार्थकता थी लेकिन यह आंखों में पट्टी किस लिए बांधी गुरुदेव ?

गुरुदेव—राज्य का एक पुराना अंधविश्वास ! इसके सिवा पांचों नर्त्तकियों से आपकी दृष्टि का सम्बन्ध न रहेगा—यह कहा था आपने।

पुरु—क्या तुम उन्हें लाए हो ? मार्ग में कहीं भी उनके बारे में सुना नहीं।

गुरुदेव—वे जो गुफा के इन पांचों द्वारों पर खड्गधारिणी प्रहरिणियां हैं, वे और कौन हैं ?

पुरु—बहुत उत्तम। [गुफा में चारों ओर देखकर] यह चैत्ररथ वन है ? आखेट में कई बार यहां आया हूं। यह किसकी मूर्ति है ?

गुरुदेव—फूलों का धनुष हाथ में है। कामदेव ही हैं।

पुरु—इस गुफा के अन्दर इनकी स्थापना किसने करदी ?

गुरुदेव—मैं नहीं जानता महाराज। [मूर्ति के पास जाते हैं।]

पुरु—इस गुफा को देखकर मैं आश्चर्य में पड़ गया हूं। आप कहते है इसमें पांच द्वार हैं, पांच इन्द्रियां मेरी भी हैं। गुरुदेव ! गुरुदेव ! मैं कहता हूं मेरा यह भीतरी मन खुलकर बाहर प्रकट हो गया है। मेरा यह देश निकाला धन्य है, जिसमें पहले अपनी देह से निकल जाना पड़ा और अन्त में अपना मन ही बाहर निकल आ गया।

गुरुदेव—महाराज, इसकी तो कोई नित्य पूजा करता जान पड़ता है। जो फूल इस मूर्ति के चरणों पर कुम्हलाकर पड़े हैं वे अधिक बासी नहीं हैं।

पुरु—जान पड़ता है किसी अपराधी कलाकार ने दंड की अवधि में यह मूर्ति बना दी। हे कामनाओं के राजा कामदेव, तुम्हें प्रणाम है। लेकिन तुम्हारी आंखें खुली नहीं रहनी चाहिए। एक नुकीले पत्थर से तुम्हारी आंखें फोड़ दूं, यह भी नहीं हो सकता। यह अपने आंखों की पट्टी अवश्य तुम्हारी आंखों में बांध दूंगा। [कामदेव

की मूर्ति की आंखों पर अपने आंख की पट्टी बांध देता है।]

गुरुदेव—अब ठीक हो गया। आप इस गुफा के बन्दी हैं, तो यह कामदेव अपनी ही दृष्टि में बन्द हो गया।

पुरु—गुरुदेव, अब वे पांचों नतकियां नहीं कही जावेंगी। वे मेरी एक-एक इन्द्रियों के द्वार की प्रहरी—अब उन्हें कामबाला कहा जायगा। उनका मेरा कान का सम्बन्ध रहेगा, काम सबसे श्रेष्ठ इन्द्रियां हैं।

गुरुदेव—इसीलिए आपने कामदेव की आंखों में भी पट्टी बांध दी कि वह बाण चलावे लेकिन शब्द भेदी।

पुरु—हं-हं-हं देखिये क्या होता है? इस वन में मैं दंड पाकर भी आया हूं और वर पाकर भी। मैं यहां यज्ञ करूंगा। [चबूतरे पर बैठ जाता है।]

गुरुदेव—कभी आप आखेट कहते हैं, कभी यज्ञ?

पुरु—मतलब कामनाओं को समाप्त कर देना है। इन्द्रियां शत्रु नहीं हैं। वे पाच द्वार, वह क्या किसी के शत्रु हो सकते हैं? इन मार्गों से भीतर घुसने वाली कामना है—वह शत्रु। मेरे मन में चढ़कर वह मुझे बन्धन में डाल देती है। इन्द्रियों पर आरूढ़ मन की मुक्ति की राह में जाता है। कामनाओं को मिटाकर ही इन्द्रियां मन को प्राप्त होती हैं। इसलिए कामनाओं की आहुति दूंगा। आहुति के लिये अग्नि चाहिये। यौवन एक प्रचण्ड अग्नि है, इसलिए उसकी आवश्यकता पड़ी। आप पुरोहित, यौवन अग्नि, कामनाओं की आहुति—यह यज्ञ है गुरुदेव! आज तक तुम मन्त्रों के गायक थे, अब कामबालाओं के सूत्राधार बन हो।

गुरुदेव—लेकिन एक बात की कमी है महाराज! कामना के इस यज्ञ में आपके साथ एक सहधर्मिणी का होना आवश्यक है। बिना उसके कोई यज्ञ पूर्ण नहीं होता।

पुरु—बिल्कुल ठीक है गुरुदेव ! तुम्हारा मतलब नारी से है। फिर और किस लिए आई हैं हमारे साथ ये पांच राजतनंकियां ? आप एक की बात कहते हैं ।

गुरुदेव—लेकिन उनमें से कोई भी आपकी सहधर्मिणी नहीं, किसी को भी आपके सामने आने की आज्ञा नहीं ।

पुरु—सहधर्मिणियां दो थीं, उन्होंने मेरे प्यार को बलात्कार समझा और बनावटी राजा के हाथों से मुझे देश निकाला दे दिया ।

गुरुदेव—हिमालय की गोद में बड़ा विचित्र यह चैत्ररथ वन है ।

पुरु—सचमुच में । राजा की ओर से ये पांचों कामबालायें मेरी पहरेदार हैं और मैंने इन पांचों को अपनी दृष्टि से ओझल किया है । मेरी दृष्टि मे बन्द हैं या उनकी आहट में मैं । मेरे देश निकाले का कारागार यह यौवन है या इस चैत्ररथ वन की यह गुफा ? जो भी है, विचित्र है ।

गुरुदेव—एक ओर इसने पर्वत का हिम बचाया है, दूसरी ओर मैदान की लू । दोनों के बीच में इस तरह यह बस गया है कि यहां बारहों महीने बसन्त ऋतु का भ्रम भासता रहता है । इसके लता-वृक्षों का चुनाव कुछ इस प्रकार किया गया है कि हर ऋतु में कोई न कोई खिलता ही रहता है ।

पुरु—गुरुदेव, आप कहां रहेंगे ?

गुरुदेव—इसी गुफा के जिस कोने में आप कहेंगे बैठा रहूंगा । इस जल की घड़ी पर आंख गड़ाये ।

पुरु—नहीं गुरुदेव, आपने कौन ऐसा अपराध किया है जो आप इस कारागार के भीतर रहेंगे ।

गुरुदेव—आपके इस क्षण-क्षण छीजते हुए यौवन की अवधि

भी तो बताते रहना है।

पुरु—इन पांच द्वारों में से किसी एक पर बैठ सकते हैं आप। नर्त्तकियों की डोरी भी तो आप ही के पास है, वहीं से ऊंचे स्वर से मुझे सावधान करते रहना।

गुरुदेव—किस द्वार पर बैठ जाऊं ?

पुरु—आकाश के द्वार पर, नाद के गुण में, वहीं से आप मेरे कान पकड़ते रहेंगे।

गुरुदेव—बहुत उपयुक्त महाराज। पांचों तत्वों के गुणों में शब्द बड़ा रहस्यमय है। शब्द ही बन्धन और शब्द ही मुक्ति! अच्छी बात है। आप विश्राम करें। मैं जाता हूं। [जल की घड़ी उठाकर चला जाता है।]

पुरु—इधर-उधर टहलता है। कामदेव की मूर्ति के पास जाता है। चबूतरे पर लेट जाता है फिर उठकर टहलता है। जब किसी तरह मन नहीं मानता तो पुकारता है।] गुरुदेव !

गुरुदेव—[ओट से ही] कहिए।

पुरु—मन नहीं मान रहा है।

गुरुदेव—क्या इच्छा है ?

पुरु—कुछ समझ नहीं पड़ती।

गुरुदेव—यह कामना का समाप्त हो जाना तो नहीं है ?

पुरु—हं-हं-हं ? नहीं गुरुदेव, बिना आहुति और बिना सहधर्मिणी के ही कैसे ?

गुरुदेव—फिर क्या करूं ?

पुरु—मन की इस बेचैनी में कोई कामना की लहर उठनी चाहिए।

गुरुदेव—[एक थाली में फल-फूल लेकर आते हैं।] लीजिए महाराज पृथ्वी तत्व के द्वार पर की कामबाला ने यह भोजन सामग्री

आपके लिए भेजी है। आपको भूख लगी होगी, यह खाने से निश्चय ही आपके मन को शांति मिलेगी ?

पुरु—भूख तो सबसे छोटी कामना है।

गुरुदेव—लेकिन चारों तत्व जैसे पृथ्वी पर ठहरे हुए हैं, इसी प्रकार भूख तमाम कामनाओं का आधार है।

पुरु—भूख से बड़ी तो प्यास है।

गुरुदेव—कोई चिंता नहीं। मैं जल तत्व के द्वार पर की कामबाला के पास जाता हूं। [जाता है।]

पुरु—[कमरे में टहलता है।]

गुरुदेव—[हाथ में एक कलश लेकर आते हैं।] लीजिए महाराज !

पुरु—क्या ले आए ?

गुरुदेव—वारुणी, महाराज !

पुरु—वारुणी ? [नाक-भौं सिकोड़ता है।]

गुरुदेव—क्यों, क्यों, ऐसी घृणा क्यों महाराज ? जल का देवता वरुण है और वारुणी में उसी के आशीर्वाद हैं। आप पीजिए तो सही, कामबाला कहती है—अभी आपकी तमाम थकावट मिटकर आपके मन में एक नई उमंग पैदा हो जायगी। चिन्ता के सारे मेघ छंट जावेंगे।

पुरु—हं-हं-हं ! आपने पी है यह कभी ?

गुरुदेव—करूंगा परीक्षा।

पुरु—नहीं गुरुदेव। कोई आवश्यकता नहीं। एक झूठे भ्रम को पैदा करने के सिवा यह और कुछ नहीं करती। इसे रख दीजिये दूर।

गुरुदेव—[घड़ा रखकर] गंध की कामबाला के पास जाऊं ?

पुरु—नहीं।

गुरुदेव—फिर तेज के द्वार पर ?

पुरु—वह अपने रूप को आपके हाथ कैसे भेज सकेगी, कामबाला के दर्शन पर प्रतिबंध है। आकाश के द्वार पर ही जाइए गुरुदेव, वहीं तो आपका डेरा है। फिर शब्द से ही पाला पड़ा। पांचों कामबालाओं से नृत्य करने को कहिए। अवश्य ही उनके नृत्य से कोई कामना जागकर मेरे मन में प्रकट हो जायगी। फिर मैं देखूंगा उसकी आहुति कैसे दी जायगी।

गुरुदेव—मैं जाता हूं। [जाता है।]

[पांचों कामबालाएं ओट में नाचने लगती हैं, पुरु ताली बजाकर प्रसन्न होता है और फिर एक चबूतरे पर लेट जाता है। लेटे-लेटे उसे नींद आ जाती है। हाथ में पूजा की थाली लेकर मालती आती है और कामदेव की मूर्ति के पास जाती है। उसकी आहट पाकर गुरुदेव भी आ जाते हैं।]

मालती—हैं ! मेरे देवता की आंख पर यह पट्टी किसने बांध दी ?

गुरुदेव—कौन हो तुम ?

मालती—[लजाकर] मैं हूं एक किसान-कन्या।

गुरुदेव—यहां क्यों चली आईं ?

मालती—नित्य की पूजा का नियम ले आया।

गुरुदेव—किसकी पूजा ?

मालती—इस देवता की।

गुरुदेव—कौन देवता है यह ?

मालती—देवता की भी क्या कोई जात होती है ?

गुरुदेव—बड़ी भोली हो तुम। देवता की कोई जात नहीं होती, इसे तुम्हारा अज्ञान कहूं या सबसे बड़ा ज्ञान यही है ?

मालती— [हाथ जोड़कर] मैं गांव की लकड़ी, कुछ जानती नहीं। बतादो फिर कौन देवता है यह ?

गुरुदेव—देवता अपने आप कुछ नहीं हैं। मनुष्य की भावना से ही वह चाहे जो बन जाता है। मुझे तुम्हारे विश्वास को तोड़ना नहीं चाहिए।

मालती—लेकिन आप उस पर पत्थर चला चुके, अब तो नाम बताना ही पड़ेगा।

गुरुदेव—यह कामदेव है।

मालती—इनकी पूजा नहीं की जाती क्या ?

गुरुदेव—नहीं।

मालती—क्यों ?

गुरुदेव—यह अंधा है।

मालती—अंधे नहीं, किसी ने आज ही इनके पट्टी बांध दी है। खोल कर देख सकते हो।

गुरुदेव—नहीं, यह नहीं खोली जायगी।

मालती—यह कामदेव कौन हैं ?

गुरुदेव—कामनाओं के राजा, अभिशाप देने में तत्पर, पर किसी को कोई वर दे नहीं सकते, इसलिए तुम्हें आज से इनकी पूजा छोड़ देनी चाहिये।

मालती—किसी का नियम छुड़ा देना पाप है।

गुरुदेव—अब तुम यहां नहीं आ सकोगी। बाहर पहरा है और वह देखो। [चबूतरे पर उधर पीठकर सोए हुए पुरु को दिखाता है।]

मालती—आखेट के लिये कोई राजकुमार आये हैं क्या ? मैं स्वयम् उनसे पूछ लूंगी। [पुरु के निकट जाती है।]

गुरुदेव—हैं ! हैं ! तुम तो बड़ी ढीठ हो। मुझे अपनी घड़ी को देखना है। [चला जाता है]

मालती—यह तो सो रहे हैं ! [लौटकर मूर्ति के पास आती है। मूर्ति की आंखों पर की पट्टी खोलकर उसे फूलमाला पहनाती है, फिर पूजा आरती करती है।]

गुरुदेव—[नेपथ्य में गाते हैं।]

ये पंचभूत इनकी रचना सब छाया का रूपांतर है।

यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूंठा नश्वर है॥

[घंटा बजाकर] सावधान महाराज ! आपकी उधार की जवानी के आठवें दिन का यह दूसरा पहर डूब गया।

पुरु—[नींद से चौंक मालती को देखकर उठता है।] कौन हो तुम ?

मालती—[कामदेव को हाथ जोड़े हुए बिना किसी भय के पूरु को देखती है।] हां मैं हूं।

पुरु—[उसकी ओर धीरे-धीरे बढ़ते हुए] मेरी कामना के प्रतिबिंब तुम्हीं हो क्या ? मेरे यज्ञ की परिपूर्णता होकर कहां से आ गईं तुम ?

मालती—[पुरु को पहचानकर धीरे-धीरे प्रेमाकर्षण से दोनों हाथों को फैलाती हुई पुरु की ओर बढ़ती है।] मेरी मनोकामना पूरी हुई और आज वे कहते थे यह देवता कोई वर नहीं दे सकता। झूठी बात। [जाकर पुरु के गले में दोनों हाथ डाल देती है।]

पुरु—[दोनों हाथ छुड़ाकर मूर्ति के पास जाता है।] तुमने क्यों इसकी पट्टी खोल दी ?

मालती—यह मेरे देवता, इन्होंने क्या अपराध किया है, जो तुमने इनकी आंखों में पट्टी बांध दी।

पुरु—यह कामनाओं का राजा कामदेव है। कामनायें मनुष्य को अन्धा बना देती हैं। कामनायें अंधी हैं। अन्धों का राजा क्यों न हो अन्धा ?

मालती—बड़ी बढ़िया बात ! बनाने वाले ने इनमें आंखें बनाईं और देखने वाला इन्हें अन्धा कहें और मुझे पहचान भी नहीं रहे !

पुरु—[विचार कर] कहां देखा है तुम्हें ?

मालती—तुम आप अन्धे हो !

पुरु—मुझ से अन्धा कहने वाली तुममें बड़ा साहस है ! कभी तुम्हें देखा और सुना नहीं। मेरे आश्रम में क्यों घुस आई तुम ?

मालती—यह आश्रम है तुम्हारा ? यह तो विलास का डेरा है। कहीं एक से एक बढ़कर सुन्दरियां नाच रही है। कहीं दास दासियों की चहल-पहल मची हुई है। कहीं बढ़िया भोजन पक रहे हैं। कहीं आसव ढाला जा रहा है, कहीं द्यूत-क्रीड़ा हो रही है। आश्रम इसी को कहते हैं।

पुरु—[हंसकर] हं-हं-हं ! और नहीं तो क्या ? पांचों इन्द्रियों को भूख से तड़पाकर मन को फांसी पर लटका देने के स्थान का नाम ही तुमने आश्रम रखा है क्या ? तब तुम्हीं ठीक हो। लेकिन यहां तो त्याग और तृप्ति, भोग और योग, बन्धन और मुक्ति अंधेरा और उजाला साथ-साथ हिल-मिल कर रहते हैं। इसी जोड़ का नाम योग है। बदन में राख पोतकर नंगे हो जाने की बात दूसरी है।

मालती—निर्दय पाषाण ! झूठे लंपट !

पुरु—हैं ! पहले भी कुछ बुरे शब्द कहे तुमने, मैं सहन कर गया, तो अब और गाली देती हो। कौन हो तुम ? तुम्हारी प्रतिहिंसा देखकर तो कहना पड़ता है, यह मेरी ही कामना कामिनी बनकर चली आई है। मैं तुम्हें क्षमा करता हूं, क्योंकि तुम नहीं जानती हो, मैं कौन हूं !

मालती—खूब जानती हूं। तुम्हें एक किसान की सरला कन्या से हंसी करते हुए लज्जा आनी चाहिये। निर्धन हुई तो क्या ? मन सबके एक ही सा है और उस मन में रहने वाली आशा और निराशा, प्रेम और घृणा, मान और अपमान यह भी सब के समान ही हैं।

पुरु—द्वार पर पहरेवालियों ने नहीं रोका तुम्हें ? मैंने उनका मुख न देखने की शपथ खाई है, शायद उसी को ठेस पहुंचाने के लिए तुम्हें मेरे पास भेज दिया।

मालती—नहीं, द्वार पर भेजने और रोकने वाला कोई था ही नहीं।

पुरु—तुम लौट जाओ सुन्दरी ! मैं राज्य का एक अपराधी हूं। यहां देश निकाले का दंड भोग रहा हूँ। मुझे एक किसान की भोली-भाली लड़की से हंसी करने की क्या पड़ी है ?

मालती—महाराज कहां हैं ? मैं उनके सामने अपना मामला रक्खूंगी।

पुरु—क्या मामला है तुम्हारा ? मुझे ही महाराज भी समझो।

मालती—क्या बक रहे हो यह ? कभी अपने को अपराधी कहते हो और कभी महाराज ?

पुरु—कहा नहीं मैंने तुमसे पहले ही, यहां अंधेरा और उजाला साथ-साथ रहते हैं। मैं बंदी हूं और भीतर ही भीतर महाराज हूँ। चाटुकारियों से गूंजती हुई राजसभा को छोड़ कर यहां बनवास भोगने आया हूं। बालू पर बरसती हुई बूंदों की तरह मैं तुम्हारी गालियों की बौछार को भी सोख लूंगा, लेकिन मुझे कारण भी तो ज्ञात हो। मैं राजा और तुम किसान की बेटी, हमारा सम्बन्ध ही क्या ?

मालती—क्या सम्बन्ध है बता दूंगी अभी। किसान के खेत में दाने की उपज देखकर ही तो राजधानी के सिक्के ढलते हैं। सच कहो, क्या राजधानी की चहल-पहल सिक्के पर ठहरी हुई है या नाज के दाने पर ? लेकिन तब तुम राजा नहीं थे। बहुत सस्ता तुम्हें यह राज्य मिल गया जान पड़ता है। तुम्हारे इस राज्य को धिक्कार है, शक्ति पा लेने पर जिसने बालू की भीत की तरह पुरानी प्रीति को मिटा दिया।

पुरु—कैसी प्रीति ? कौन हो तुम ?

मालती—प्रेम को दोहराकर उसकी इच्छा को धिक्कार है । [मुंह फिराकर जाना चाहती है ।]

पुरु—ठहरो सुंदरि- ठहरो भूल हो गई ।

मालती—[रुककर कनखियों से धीरे-धीरे पुरु को देखती है ।] भूल ? कैसी भूल ?

पुरु—मेरी नहीं तुम्हारी ।

मालती—हो नहीं सकती ।

पुरु—इधर आओ, समझा दूंगा । तुमने क्या समझ रखा है मुझे ?

मालती—युवराज के साथ पारसाल आखेट में तुम यहां आये थे न ? इसी चंत्ररथ वन में हमारी प्रीति हुई थी । यहीं पर इसी देवता के सामने तुमने प्रतिज्ञा की थी कि तुम एक वर्ष के भीतर ही आकर मुझ से विवाह कर लोगे । तुम झूठे हो, इसी से देवता को भी अंधा बताते हो ।

पुरु—हं-हं-हं ! यही तो बात है, हे सरले ! वह दूसरा व्यक्ति है, मैं नहीं हूं ।

मालती—कैसे मान लूं ? क्या मुझे भी अंधा समझ रखा है तुमने ? बिल्कुल तुम ही हो । वही मुख, वाणी भिन्न, वही आंखें दृष्टि दूसरी, वही होंठ, बोल कपट के । वेश जरूर बदल गया है इस बार ! राजा का वेश ! उसी के हिसाब का यह छल और धोका ! वही हो तुम, वही हो ।

पुरु—तुम मुझे पुरु समझ रही हो तो धोखा खाती हो ।

मालती—हां यही है वह पवित्र नाम । फिर और कौन हो सकते हो तुम ?

पुरु—पुरु के इस घर में रहने वाला एक दूसरा प्राणी ।

मालती—कैसा अचरज है यह ?

गुरुदेव—[नेपथ्य में गाते हैं।] सावधान महाराज !

यह दो पंचभूत, इनकी रचना, सब छाया का रूपान्तर है।
यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूंठा नश्वर है॥

पुरु—सुना तुमने ? यह मेरे यौवन पर भी चोट की जा रही है। यह सावधान मुझे ही किया जा रहा है। वह महाराज मैं ही हूं। मैं महाराज ययाति हूं।

मालती—झूठी बात।

पुरु—[पुकार कर] गुरुदेव, यहां आइए।

गुरुदेव—[जल की घड़ी के साथ आते हैं।]

पुरु—गुरुदेव ! बताइए मैं कौन हूँ ? बाहर से नहीं, भीतर से।

गुरुदेव—आप महाराज ययाति है।

मालती—क्या महाराज को देखा नहीं है मैंने ? वह तो बूढ़े हैं।

गुरुदेव—सुनती जाओ। महाराज ययाति ने एक वर्ष के लिए अपने सबसे छोटे राजकुमार पुरु की जवानी के साथ अपने बुढ़ापे की बदली की है। [जल की घड़ी मे देखता है।]

पुरु—इसलिए तुम्हारे साथ की गई प्रेम की प्रतिज्ञा राजधानी में बूढ़े महाराज अर्थात् इस समय के पुरु के पास है, वहां जाकर तुम पूछ सकती हो।

मालती—वह मुझे पहचान लेंगे ?

गुरुदेव—जिस प्रकार यहां इन्होंने तुम्हें नहीं पहचाना, उसी तरह तुम उन्हें वहां न पहचान सकोगी, परन्तु वह तुरन्त ही समझ लेंगे।

पुरु—लेकिन जो राजभवन के भीतर अपना प्रेम ढूंढने जाओगी, तो प्रहरी तुम्हें पागल समझ कर भीतर घुसने न देगा। क्योंकि

राजधानी में यह सच्चाई छिपा दी गई है।

मालती—फिर कैसे होगा ?

पुरु—वहां जाकर कहना, महाराज को एक अभियोग सुनाना है। लेकिन होने वाला कुछ नहीं है। वह बना हुआ महाराज तुम से यही कहेगा कि हे सुन्दरी एक वर्ष तक ठहर जाओ, मेरा यौवन दूसरे की धरोहर है।

मालती—नहीं, इस प्रकार अपने प्रेमी को बदनाम करती हुई मैं कहीं नहीं भटक सकती। मेरा प्रेम यहीं इस रूप ने लूट रक्खा है, मैं और कहां जाऊं ?

पुरु—सुन्दरी ? प्रेम क्या बाहरी चमड़े की कहानी है। वह आत्मा की डोरी है। आत्मा से आत्मा का सम्बन्ध। इसलिए राजधानी में है तुम्हारे प्रेम की आत्मा, भले ही उसकी तीर सी सीधी कमर धनुष सी टेढ़ी हो गई है।

मालती—[क्रोध में] सिखाने के लिए दूसरे ! अगर प्रेम रूप और उमर का नहीं था तो क्यों तुमने मेरे प्रेम को जवानी लूट ली ! डाकू हो तुम, महाराज कहां रहे ? प्रेम, न्याय और धर्म के नाम पर मैं डाकू के ही सामने मैं अपना मामला रखती हूं—है तुम्हारे होठों में कुछ जान ?

पुरु—[निराधार हो गुरुदेव को देखता है] गुरुदेव ! [माथा पकड़ कर बैठ जाता है।] गुरुदेव !! [गुरुदेव का हाथ पकड़ उठ जाता है, फिर उनके दोनों कन्धे पकड़ता है।] गुरुदेव !!! वर्ष के बचे हुए महीने, दिन और पहरों को एक साथ ही नहीं डुबा सकते।

गुरुदेव—[जल की घड़ी को हाथ में ऊंचा उठाकर देखते हैं।] एक ही एक बूंद पानी टपक रहा है।

पुरु—किसी तरह इसके छेद को बढ़ा इसकी चाल में वेग उपजा दो। गुरुदेव ! नहीं कह सकते कि ययाति ! तेरे यौवन का

अन्तिम दिन डूब गया आज।

गुरुदेव—[जल की घडी भूमि पर रखकर दोनों हाथों से कान पकड़ता है!] नहीं महाराज ऐसा कौन कर सकता है? महाकाल का नियम क्या मृदंग का ठेका है जो हमारी इच्छा से द्रुत या विलम्बित किया जा सके। सूर्य का तेज वह दीपक नहीं है कि फूंक मारकर तुम उसे अस्त कर दो और जलाकर कह दो प्रातःकाल हो गया।

पुरु—[दंडी सांस छोड़ सिर हिलाकर] नहीं देवि, ययाति डाकू नहीं है। उसने कामना को जिलाने के लिये नहीं, उसे जलाने के लिये जवानी ली है। ययाति राजा है, लेकिन तुम्हारा अपराधी तुम्हारे सामने सिर झुकाता है। चाहे जो दंड उसे दो। [सिर झुकाता है।

मालती—[अलग रह जाती है।] क्या दंड दूं मैं तुम्हें? धरती की मेहनत पर ही हमारा जीवन है। जब मैं खेत में दाना बिखराती हूं तो जानवर उसे खोदकर नहीं चुग जाते। और जब मैंने एक युवक के मन में प्रेम बोया तो तुम अपने को महाराज कहने वाले, तुम छीन ले गए उसे। तुम्हें कौन दंड दे सकता है?

पुरु—साल भर बाद तुम्हें तुम्हारा पुरु वापिस मिल जायगा।

गुरुदेव—उसमें भी आज आठ दिन कम हो गए।

मालती—इस मूर्ति की पूजा से रोकने वाले तुम कौन हो?

पुरु—तुम नित्य पूजा कर सकती हो।

गुरुदेव—लेकिन……

पुरु—नहीं गुरुदेव, ये चाहे जैसे उसकी पूजा करें।

मालती—[कामदेव पर चढ़ाई गई माला उतार पुरु के गले में पहनाती है और तेजी से चली जाती है।]

गुरुदेव—पगली कैसे वेग से चली गई! [जल की घड़ी उठाते हुए गुनगुनाने लगता है।]

ये पंचभूत उनकी रचना सब छाया का रूपान्तर है—

पुरु—[माला उतार कर गुरुदेव को देकर] गुरुदेव ! अभी यह शरीर उसकी पूजा को नहीं मेरी आहुति के लिये है । यह माला उसी के देवता को पहना दीजिए ।

गुरुदेव—[मूर्ति को माला पहनाकर पट्टी उसके बांधता है ।] लेकिन यह कामनाओं का राजा अन्धा है महाराज ।

पुरु—निःसंदेह गुरुदेव ! कलाकार की यह भूल हम नहीं सह सकते । खूब कस कर बांध दीजिये इसके पट्टी ।

गुरुदेव—कल को फिर खोल देगी वह ।

पुरु—हम उसकी आंखों को अंध विश्वास कहते हैं और वह हमारी पट्टी को कहती होगी । कामबालाओं ने नाच शीघ्र ही बंद कर दिया ।

गुरुदेव—[बालू की घड़ी उठा गुनगुनाता हुआ चला जाता है ।]

यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूठा नश्वर है ।

पृष्ठ संगीत

[पुरु इधर-उधर टहलता है । नेपथ्य में कामबालाएं फिर नृत्य आरम्भ करती हैं ।]

पुरु—[थाली में से कुछ फल खाने लगता है ।]

गुरुदेव—[नेपथ्य में]

हम समझ रहे हम खाते हैं यह काल खा रहा है हमको,
तुम ज्योति समझते हो तम को, तुम सत्य समझते हो भ्रम को ।

पुरु—[हाथ रोक बेचैन होकर फिर इधर उधर घूमने लगता है । नेपथ्य में नाच जारी है । वारुणी के कलश को उठाकर ज्योंही पीना चाहता है । त्योंही—]

गुरुदेव—[नेपथ्य में गाता है]

क्यों फंसता है तू विषयों में क्यों भूल गया है तू यमको।
दो सांसों की फांसों में तू क्यों समझ रहा अपना घर है।
यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूठा नश्वर है ॥

पुरु—[हरी पत्तियों में कुछ आवाजें सुन उधर आकृष्ट हो जाता है।] नाच बन्द कर दीजिये गुरुदेव ! कुछ सुनना चाहता हूँ मैं, यह ध्वनि मेरे भीतर है या बाहर, ये कामबालाएं नहीं सुनने दे रही हैं। [नाच बंद हो जाता है। पत्तों में फिर खड़खड़ाहट होती है। कौन ? बड़ी देर से इस झाड़ी में छिपे तुम कौन हो ?

विचित्रा—[झाड़ी की ओट में खांसती है.]

पुरु—कौन मालती ? तुम गईं नहीं अभी ?

विचित्रा—[झाड़ी की ओट में हंसती है।]

पुरु—तब क्या तुम कामबाला हो ? इतनी अवज्ञ ! तुम्हें मेरे सामने आने का प्रतिबन्ध है, इसी से क्या छिपकर उसे तोड़ना चाहती हो। सावधान ! उसका दंड मृत्यु है।

विचित्रा—[ओट से] मैं कामबाला नहीं हूं। कौन हैं वे ?

पुरु—वे जो अभी नाच रही थीं। इस गुफा के द्वारों पर पहरा भी देती हैं वे। तुम्हें रोका नहीं, जब तुम यहां आईं ?

विचित्रा:—मैं उधर से नहीं आई। क्या करती हैं ये कामबालाएं ?

पुरु—ये मेरे मन में कामना उपजाती हैं।

विचित्रा—और तुम क्या करते हो ?

पुरु—मैं उन कामनाओं को मिटाता हूं।

विचित्रा—[ओट से] यह भी कोई बात हुई ? मिटाना ही जब हुआ, तो फिर उपजाते ही क्यों हो ?

पुरु—एक अद्भुत सत्य तुमने सुना दिया ! कौन हो तुम ?

विचित्रा—[ओट से] मैं तुम्हारे इस कामना लोक की नहीं हूं।

पुरु—सामने आओ।

विचित्रा—[ओट से] पहले इन कामबालाओं को यहा से निकालो, तभी आऊंगी।

पुरु—[चिल्लाकर] गुरुदेव ! गुरुदेव ! जल्दी से आइए।

गुरुदेव—[हाथ में जल की घड़ी लेकर तेजी से आते हैं।] क्या है ? क्या है ?

पुरु—गुरुदेव, इन पांचों राजनर्त्तकियों को राजधानी को वापस भेज दीजिये। अभी।

गुरुदेव—कामना नहीं जगाई जायगी तो फिर आहुति किसकी दी जायगी ?

पुरु—जगी हुई नहीं, सोई हुई कामना की।

गुरुदेव—पहरा कौन देगा ?

पुरु—क्या मेरे भाग जाने का कोई सन्देह है आपको ?

गुरुदेव—आपके जाने का नहीं, किसी और के आने का।

पुरु—आने वाला आ चुका गुरुदेव, जाने वालियों को भेजिये तुरन्त।

गुरुदेव—[जाते हैं।]

पुरु—चुप हो गईं ? कोई देवी हो क्या ?

विचित्रा—नहीं, एक अप्सरा हूं। मुझे शाप भ्रष्ट होकर एक वर्ष के लिये इस मृत्यु लोक में उतर आना पड़ा है।

पुरु—और बड़े ही आश्चर्य की बात है, एक ही वर्ष के लिये मैं भी बुढ़ापे के लोक से लौटकर इस यौवन के लोक में आया हूं। सुन्दरी ! क्या अपराध हो गया तुम से ?

विचित्रा—[ओट से] देवराज इन्द्र की समझ और क्या ? नाचते हुए सम पर आने में एक मात्रा रह गई थी एक दिन। एक मात्रा के लिए

एक वर्ष ! [दांत कटकटाती है।] ऽऽऽऽ ! ऽऽऽऽ ! ऽऽऽऽ !

पुरु—हैं ! यह क्या करने लगीं तुम ? कांप रही हो ? क्या कपड़े कम हैं तुम्हारे अंग मे।

विचित्रा—[ओट से ही] काया ही अभी हाल में पाई है, तुम कपड़ों की बात कहते हो। दे सकते हो मुझे ?

[नेपथ्य में घूंघरू पहने हुए पैरों की भूमि पर एक ठोकर]

पुरु—[चिल्लाकर] हैं ! हैं ! अभी इधर मत आओ। ठहरो, ठहरो, वहीं छिपी रहो।

विचित्रा—क्यों क्या कामबालाऐं अभी नहीं गई ?

पुरु—जा रही हैं। लेकिन यह कामना लोक है। इसके सामाजिक नियमों की रक्षा करनी होगी तुम्हें।

गुरुदेव—[हाथ में जल की घड़ी सहित दौड़ते हुए आते हैं।] महाराज नर्त्तकियां पूछती हैं उनका क्या अपराध हो गया ?

पुरु—[जल्दी-जल्दी] कह दो, उनका अपराध नहीं है कोई। मेरे मन में उनकी आवश्यकता नहीं। आदर के साथ उन्हें राजधानी में भेज दो।

गुरुदेव—आप किससे बातें कर रहे हैं ?

पुरु—फिर बताऊंगा। अभी कुछ नहीं बता सकता। पहले इन नर्त्तकियों को यहां से हटा दो। एक मंजूषा में वस्त्रालंकार आए थे, वह मुझे दे जाइये। जल्दी गुरुदेव, जल्दी। [गुरुदेव जाते हैं और तुरन्त ही मंजूषा ला रख कर चले जाते हैं। पुरु सन्दूक खोलकर उसमें से एक साड़ी निकाल कर झाड़ी की ओर फेंकते हैं। लो इसे अच्छी तरह पहन लज्जा रक्खो।

विचित्रा—[ओट से] क्या हुई लज्जा ?

पुरु—मनुष्यों की दृष्टि से बचने का कवच।

विचित्रा—[ओट से] वह भी क्या ठंडी हवा की तरह

तीक्ष्ण है।

पुरु—धीरे-धीरे मालूम हो जायगा।

विचित्रा— [ओट से] ऐसे दयालु तुम कौन हो ?

पुरु—आर्यावर्त्त का सम्राट, मुझे ययाति कहते हैं।

विचित्रा—[ओट से] राजधानी में क्यों नहीं रहते ? यह गुफा तो तपस्या के योग्य आश्रम थी।

पुरु—और तपस्वियों का तप खंडित करने के लिए तुम इन्द्र की आज्ञा सिर पर लेती हो।

विचित्रा—[ओट से] आज शाप पाकर आई हूं।

पुरु—इसी से मैं निर्भय हूं।

[नेपथ्य में घुंघरू बंधे नाचते हुए पैरों के जाने की ध्वनि।]

विचित्रा—कामबालाएँ चली जा रही हैं क्या ?

पुरु—मेरी पांच इन्द्रियों के ये पांचों बंधन दूर ! दूर ! मेरे मन की तमाम कामनाएं दूर हो गईं।

विचित्रा—[ओट से] झूठा अहंकार।

[पैरों की ध्वनि दूरी में घुल जाती है और विचित्रा प्रकट होती है।]

पुरु—[चकित होकर] अद्भुत और सुन्दर ! पांच कामबालाओं के अन्तर्ध्यान पर पैदा हुई तुम ? कौन हो तुम ? क्या कहूं तुमसे ? उन पांचों इन्द्रियों की एकता हो क्या तुम ? मैं क्यों न तुम्हें अपने मन की उज्ज्वल ज्योतिरूपिणी बुद्धि कहूं ?

विचित्रा—हं-हं-हं ! राजन् मेरा जाड़ा तो चला गया। तुम्हारी लज्जा की बात मैं नहीं जानती।

पुरु—मेरी लज्जा कैसी ?

विचित्रा—तो क्या वह मेरी है ?

पुरु—हम में से किसी की भी नहीं। यह कामना लोक है, स्थूलता में यही कर्मलोक भी कहलाता है। कामना और कर्म के बीच की दीवार का नाम लज्जा है।

विचित्रा—वहां कामना और कर्म के बीच में कोई देश-काल नहीं है ?

पुरु—मैं नहीं समझ सकता उस स्थिति को।

विचित्रा—भगवान का धन्यवाद है, जो इस देश निकाले में मुझे तुम्हारे जैसे महाराज का साथ मिला।

पुरु—मैं भी क्यों न उनके गुण गाऊं ? जो मेरे देश निकाले में मुझे तुम्हारी जैसी अप्सरा की संगति मिली। क्या नाम है तुम्हारा।

विचित्रा—मुझे विचित्रा कहते हैं। [पुरु का सहसा हाथ पकड़ लेती है।] ययाति ! बहुत ठंडे हाथ हैं तुम्हारे !

पुरु—[अपना हाथ छुड़ा लेता है।] हैं ! हैं ! यह क्या करती हो ?

विचित्रा—क्यों क्या हो गया ?

पुरु—यहां इस तरह किसी का हाथ नहीं पकड़ा जाता।

विचित्रा—नहीं तो क्या हो जाता है ?

पुरु—क्या बता दूं—क्या होता है ? एक बार कुएं में पड़ी हुई एक महिला का हाथ उसे बचाने के लिये पकड़ना पड़ा था, तो उससे विवाह करना पड़ा।

विचित्रा—क्या हुआ विवाह ?

पुरु—स्त्री और पुरुष के बीच का एक पवित्र समझौता, जिसमें वे दोनों आजन्म सुख-दुख के साथी और पाप-पुण्य के साझी हो जाते हैं।

विचित्रा—एक वर्ष के लिये नहीं हो सकता ऐसा समझौता ?

पुरु—नहीं।

विचित्रा:—फिर क्या होगा ? मुझे तो एक ही वर्ष का देशनिकाला मिला है।

पुरु—(दोनों हाथों से ताली बजाकर) कैसे संयोग की बात है—और एक ही वर्ष के लिए मैं भी निकाला गया हूँ ।

विचित्रा—तब तो मिली-मिलाई है हमारी जोड़ी ? मैं तुम्हारे दोनों हाथ पकड़ लूंगी । (पुरु के दोनों हाथ पकड़ नाचने लगती है ।) तुम्हें करना पड़ेगा मुझसे विवाह !

पुरु—ठहरो, ठहरो तो सही, ऐसे ही हाथ पकड़ लेने से थोड़े हो जाता है विवाह । पहले गुरुदेव विवाह का दिन ढूंढ़ेंगे । फिर शुभ लग्न में प्रतिज्ञा की डोरी से हमारे मन बांधे जावेंगे, तब होगा विवाह ।

विचित्रा—कौन हैं गुरुदेव ?

गुरुदेव—(आकर झांकते हैं, फिर चले जाते हैं। ओट से गाकर)

तू दो सांसों की फांसों में क्यों समझ रहा अपना घर है ?

पुरु—यही हैं गुरुदेव ! (पुकार कर) गुरु देव !

गुरुदेव—(जल की घड़ी हाथ में लिए आता है, विचित्रा को देख घबराता है।) यह कौन ? महाराज क्या फिर कुएं में से किसी को हाथ डालकर निकाल लाए ?

पुरु—हां गुरुदेव, कामना से ही कामिनी प्रकट हो जाती है।

गुरुदेव—लेकिन आप यहां कामना को समाप्त करने आए हैं।

पुरु—और आप ही ने तो कहा है बिना सहधर्मिणी के यह यज्ञ पूरा नहीं होगा। यह अप्सरा मुझसे विवाह करना चाहती है।

गुरुदेव—अप्सरा तो तप को भंग करती है।

पुरु—लेकिन यह इन्द्र से लड़कर आई है। आप जल्दी से लग्न ढूंढिए।

गुरुदेव—(कमर से पंचांग निकालते हुए) जल्दी कैसे हो

सकता है ? अभी तो रात ही में शुक्र अस्त हुआ है।

विचित्रा—क्या हुआ यह शुक्र ?

गुरुदेव—एक तारा है, जब तक अस्त रहता है, तब तक विवाह का कर्म नहीं किया जाता।

विचित्रा—बड़ा विचित्र यह तुम्हारा भूगोल है। उदय-अस्त का यह कैसा रोग है यहां ? कैसे भ्रम में पड़े हैं आप लोग। राजन्, इस आकाश की गहराई में न कोई ग्रह डूबता है, न उतराता है। यह आपकी अपनी ही ओट है, जो आप किसी को ओझल और प्रकट समझते हैं। गुरुदेव, एक ही वर्ष के लिये मैं यहां आई हूँ और एक वर्ष तक अगर आपका तारा नहीं दिखाई दिया तो क्या मैं इस कामना के लोक में कुमारी ही रह जाऊंगी ?

पुरु—और मैं भी क्या क्वांरा ही रह जाऊंगा ? बिना धर्मपत्नी के कैसे मेरा यज्ञ पूरा होगा ?

गुरुदेव—सुन्दरी, तुम्हारी जन्मपत्री कहां है ?

विचित्रा—कैसी जन्मपत्री ?

गुरुदेव—जन्म की तिथि तो याद होगी।

पुरु—हं-हं-हं ! गुरुदेव ! देवलोक से उतरी हुई अप्सरा, इनकी जन्म कुण्डली कैसी ?

गुरुदेव—हो गया फिर, जब जन्मकुण्डली का ही पता नहीं तो विवाह का ही लग्न कैसा ? जब, जहां, जैसे और जिसके साथ हो सकता है विवाह।

पुरु—आप मान लेंगे ?

गुरुदेव—क्यों नहीं ? इसी का नाम तो गांधर्व-विवाह है।

(बालू की घड़ी में देखता है।)

पुरु—फिर भी एक दिन कोई ढूंढ़ दीजिए।

गुरुदेव—(घड़ी में देखता हुआ) ठहर जाइए, यह दिन

ही तो देख रहा हूँ। [घड़ी को उलटकर घंटा बजाता है।] सावधान महाराज, आपकी जवानी के आठवें दिन के तीसरे पहर की यह पहली घड़ी डूब गई! [चला जाता है।]

विचित्रा—यह कैसी गिनती है महाराज ?

पुरु—यह काल की गिनती है। ये कम हुए दिन मेरे यौवन के वर्ष के हैं।

विचित्रा—[अपने हाथ की उंगलियों पर गिनती हुई] एक, दो, तीन, चार, पांच, छै, सात, आठ-आठ ही बार मैंने सूर्योदय के भ्रम को गिना है। आपके यौवन का आरम्भ और मेरा इस लोक में आना एक ही दिन की बात है। कैसा विचित्र यह संयोग! गुरुदेव का तारा कहीं भी हो। किसी छिपे हुये हाथ ने हम दोनों के भाग्य को एक ही रेखा से मिला दिया है।

पुरु—मुझे भी ऐसा ही जान पड़ता है। अगर एक का शाप दूसरे के वर से मेल न खा जाता तो बड़ा अन्धेर मच जाता इस सृष्टि में। बैठो सुन्दरि!

विचित्रा—अब तो तुम मुझे छू सकते हो न ? गुरुदेव ने भी आज्ञा दे दी।

पुरु—क्यों नहीं ? [मंजूषा खोलकर आभूषण निकालता है।] इन आभूषणों से तुम्हारा शृङ्गार करूंगा।

विचित्रा—मैंने तुम्हारी उन पांच नर्त्तकियों को यहां से लौटा दिया, कुछ बुरा तो नहीं माना तुमने ?

पुरु—बुरा किस बात का ? तुम उन पांचों की एकता हो। वे मेरी पांच इन्द्रियों की चंचलता थीं तो तुम मेरी बुद्धि की स्थिरता हो। मन में बुद्धि के प्रवेश करते ही, वहां कामबालाएं फिर कैसे ठहर सकती हैं ? [चूड़ी, भुजबंद, हार और करधनी उसे देकर] लो इन्हें पहनो।

विचित्रा—[आभूषण पहनने लगती है]

गुरुदेव—[नेपथ्य में गाते हैं।]

तूने काया को मल मल धो उज्ज्वल परिधान किये धारण।
मोहक सुगन्धि-चर्चित तन में कर लिए सुसज्जित आभूषण।
क्यों नहीं सत्य यह जाग रहा तेरी मति में कोई भी क्षण।
यह हाड़-मांस, कफ रुधिर और मल-मूत्र का भरा पंजर है।
ये पंचभूत इनकी रचना सब छाया का रूपान्तर है।
यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूठा नश्वर है॥

पुरु—[छायांगना को करधनी भी गले में ही पहनते देखकर] हैं, यह क्या कर रही हो तुम ? हं हं हं ! क्या ऐसे ही भोले पन से तुम ऋषिमुनियों को भरमाती हो ? यह गले में नहीं कमर में पहनी जाती है।

छायांगना—[उसे कमर में पहनती है]

पुरु—बैठो, तुम्हें मुकुट पहनाऊंगा। [छायांगना के मुकुट पहनाकर] स्वर्ग का रूप धरती की कला से निखर उठा।

छायांगना—[सहसा उठ जाती है।] राजन् बड़ा विचित्र तुम्हारा यह कामना लोक है। कोई इच्छा उत्पन्न हो रही है मेरे। मैं नहीं जानती वह क्या है ? [बेचैनी से इधर उधर देखती है।]

पुरु—क्या बात है ? यह आभूषण भारी तो नहीं जान पड़ते ?

छायांगना—नहीं तो।

पुरु—फिर ?

छायांगना—क्या बताऊं महाराज ! [पेट में हाथ रखती है]

पुरु—पेट में दर्द तो नहीं है ?

छायांगना—हां ऐसा ही जान पड़ता है।

पुरु—क्या खाया था तुमने ?

छायांगना—कुछ भी नहीं।

पुरु—तब तुम्हें भूख लगी है।

विचित्रा—भूख कैसी पीड़ा है ?

पुरु—संसार की समस्त पीड़ाओं की माता यही भूख है। लो तुम्हें भूख लगी है। [मेवे, मिष्ठान्न का थाल विचित्रा के सामने रखता है।] लो खाओ।

विचित्रा—[खाने लगती है।]

पुरु—इसी का नाम भूख है, खा लेने का नाम तृप्ति है।

विचित्रा—वहां न भूख है न तृप्ति, न अभाव है न पूर्णता, न उदय है न अस्त, केवल वर्त्तमान ही वर्त्तमान। राजन् तुम भी लो न।

पुरु—जीभ की भूख से आंखों की प्यास बड़ी है। मैं तुम्हारे स्वर्गीय रूप और यौवन से अपनी आंखो को तृप्त कर रहा हूं।

गुरुदेव—[नेपथ्य से]—

यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूठा नश्वर है !

विचित्रा—राजन्, बार-बार गुरुदेव यह किसके यौवन पर कटाक्ष कर रहे हैं।

पुरु—यह यौवन मेरा है विचित्रा। हां तुम्हें मुझे बता देना चाहिये। मृत्यु लोक में पहले तो हमारा यौवन किसी का भी नहीं है, फिर मेरा तो यह उधार का है।

विचित्रा—उधार कैसा ?

पुरु—मेरा यौवन बीत चुका। एक वर्ष के लिये मैं यह अपने पुत्र से मांग कर लाया हूं। अगर तुम मेरे बुढ़ापे को देख पातीं तो शायद भूलकर भी इस गुफा में न आतीं।

विचित्रा—नियति के चक्र को कौन जानता है ? [भोजन समाप्त कर] बस हो गया। मैंने भूख को पहिचान लिया और मेरी तृप्ति हो गई। यही दो सिरे हैं तुम्हारे इस कामना लोक के। इसी कामना के दंड को भोगने के लिय मैं यहां आई हूं।

पुरु—मैं भी कामनाओं की आहुति दूंगा।

विचित्रा—कहां ?

पुरु—तुम मेरी बुद्धि की ज्योति हो, तुम्हारे इस दिव्य रूप में।

विचित्रा—कामना की आहुति कामिनी में क्यों ?

पुरु—फिर किसमें ?

विचित्रा—कामनायें क्या हैं ?

पुरु—पांचों इन्द्रियों के उपद्रव।

विचित्रा—पांचों इन्द्रियां क्या हैं ?

पुरु—पांचों तत्वों के डेरे।

विचित्रा—कामनाओं को कौन उपजाता है ?

पुरु—अन्न का दाना।

विचित्रा—अन्न के दाने को कौन उपजाता है ?

पुरु—पांचों तत्व। पृथ्वी में बोया जाता है, जल से सींचा जाता है, वायु में सांस लेता है, धूप में पकता है और प्रकाश में बढ़ता है।

विचित्रा—पांचों तत्वों से उपजकर फिर पांचों तत्वों में जिस तरह अनाज का दाना लीन हो जाता है, इसी प्रकार कामना में ही कामना को भस्म कर दो।

पुरु—विचित्रे ! एक अद्भुत सत्य प्रकट कर दिया तुमने। अवश्य ही तुम मेरे यज्ञ की परिपूर्णता होकर आई हो। कामबालाओं से कामना जगाना मेरी भूल थी। कामिनी में कामना की आहुति देना दूसरी भूल। कामना में ही कामना की आहुति—अद्भुत दिव्य सत्य प्रकट कर दिया तुमने।

विचित्रा—राजन् ! क्या खिला दिया तुमने मुझे ? [उसे धक्के लगते हैं। वह बैठ जाती है।]

पुरु—क्यों क्या हो गया ? इस वारुणी के कलश को हमने

छुवा भी नहीं। फिर यह भ्रम कैसे उपज गया ?

विचित्रा—राजन् मेरी आंखें बटी जा रही हैं आपस में।

पुरु—हं-हं-हं ! अब समझा। नाज का दाना खाकर जब यह आती है तो यह नाज के दाने की बेटी है। सो जाने पर जब हमें भूख लगती है तो नींद नाज के दाने की मां बन जाती है।

विचित्रा—[बैठी-बैठी ऊंघती है] हां राजन् ! ऐसा ही होगा। [पुरु की गोद में सिर रखकर सो जाती है।]

पुरु—सो जाओ विचित्रे ! धरती पर इस कामनाओं के बीज को तुमने पहली बार चखा है, सो जाओ, लेकिन यह कामना कभी नहीं सोती। पलकों की ओट में यह तो और भी चैतन्य हो उठती है। अंधकार को तोड़कर जिन चित्रों की यह रचना करती है, क्या वह सपना है ? क्यों गुरुदेव ! क्या आप भी सो गए ?

गुरुदेव—[नेपथ्य में] कौन कहता है ? मैं तो जाग रहा हूं काल की घड़ी के साथ, वारुणी का कलश में नहीं ले गया।

पुरु—कामनाएं सब नशे ही तो हैं। मैं कहता हूं यह अन्न का दाना क्या वारुणी इसमें से नहीं पैदा हो जाती ? नींद-यह क्या छोटा नशा है ? लेकिन एक अद्भुत सत्य खोल दिया विचित्रा ने। कामना की कामना में ही आहुति दी जायगी।

गुरुदेव—[नेपथ्य से] क्या अर्थ हुआ इसका ?

पुरु—दृष्टि आंख में लय कर दी जायगी, स्वर कान में विलीन हो जायगा, रस जीभ में, गंध नाक में खो जायगी और छूत अपने ही अंग में समा जायगी।

गुरुदेव—इंद्रिय में कामना की आहुति कहो।

पुरु—यह सुर-लोक की जागृति धरती के अंधकार में सो गई।

गुरुदेवव—[गाता है]

तुम फूल बिछाकर सोते हो, स्वपनों की चादर को ताने।

है पता तुम्हें, क्यों जाग रही है मौत तुम्हारे सिरहाने ?
इसने पीसे हैं बड़े-बड़े ज्ञानी-मानी, दाने-स्याने ।
यह पहरेदार लुटेरा है-क्यों इसका नहीं तुझे डर है ?
ये पंचभूत इनकी रचना सब छाया का रूपान्तर है ।
यह यौवन नहीं तुम्हारा है, जीवन भी झूठा नश्वर है ।।

× × × [परदा गिरता है और एक सप्ताह का अवकाश दिखा उठ जाता है ।] × × ×

गुरुदेव – [नेपथ्य में घंटा बजाकर] सावधान महाराज] आपके नए यौवन के आज पंद्रह दिन पूरे डूब गए, सोलहवें दिन के दो पहर और एक घड़ी ये सब भी डूब गए ।

[पुरु और विचित्रा कामदेव के पास खड़े होकर सुन रहे हैं ।]

पुरु—मैं नहीं जानता, तब से वह न जाने कहां चली गई । उसी ने इस कामदेव की पूजा करनी आरम्भ की थी । यह गंध, अक्षत, फूल-माला सब उसी की याद दिलाते हैं ।

विचित्रा – और यह जो इनकी आंखों में पट्टी बांधी गई है ।

पुरु—यह मेरा और गुरुदेव का न्याय है ।

विचित्रा—खोल दूं इसे ?

पुरु—ठहरो विचित्रे !

विचित्रा – [रुक जाती है ।]

गुरुदेव – [नेपथ्य में] महाराज एक आवश्यक संदेश लेकर राजधानी से एक दूत आया है ।

पुरु – गुरुदेव, उसे यहीं भेज दीजिए ।

दूत – [आकर] राजकुमार पुरु की जय हो ! महाराज ने मुझे भेजा है । प्रजा में भयानक विप्लव मच गया ।

पुरु—क्यों क्या हो गया ? क्या चारों भाई कारागार तोड़कर

बाहर निकल आए।

दूत—चारों भाई तो नहीं, पर चारों वर्ण, चारों आश्रमों को तोड़कर बाहर निकल आए।

पुरु—[चौंक कर] हैं !

विचित्रा—क्या कहता है यह ?

दूत—ब्राह्मण पतित हो गए।

गुरुदेव—[नेपथ्य में] ब्राह्मण पतित हो गया ! [आकर वारुणी के कलश को उठाता है।] ब्राह्मण पतित हो गया ! [कलश ले जाने लगता है।]

पुरु—गुरुदेव, यह वारुणी है, इसे कहां ले चले। ब्राह्मण का इससे क्या काम ? वह काल की घड़ी का प्रहरी है।

गुरुदेव—वह ब्राह्मण पतित हो गया। इससे उसे लुढ़क जाने में सहायता मिलेगी महाराज ! रोकिए नहीं। [कलश उठाकर ले जाता है।]

विचित्रा—ब्राह्मण कौन है ?

पुरु—प्रजा का मस्तक, समाज का मुकुट, ज्ञान का स्वामी। ज्ञान विश्व की छत्रछाया है।

विचित्रा—ब्राह्मण कैसे पतित हो गया ?

पुरु—देखा नहीं तुमने ? वह वारुणी का कलश उठा ले गया।

गुरुदेव—[नेपथ्य से] जल के देवता वरुण की पूजा के लिए।

दूत—ब्राह्मण धन का लोभी हो गया, विद्या को बेचने लगा। उसने इन्द्रियों पर सत्य को निछावर कर दिया। समस्त मानवता की कल्याण-साधना छोड़कर वह अपने ही स्वार्थ में डूब गया।

पुरु—अगर ऐसा है तो शूद्र को ऊंचा उठा दो। ब्राह्मण शूद्र हो गया। ब्राह्मण की विद्या, उसकी महिमा और उसका आदर छीनकर शूद्र को दे दिए जायं। क्यों विचित्रे ?

विचित्रा—शूद्र कौन है ?

पुरु—प्रजा के पैर, समाज की बुनियाद । सारा ढांचा उसी पर ठहरा है । वह सेवक है । सेवा विश्व का आधार है, उसी के त्याग पर धरती स्थिर है ।

दूत—महाराज क्षत्रिय विलासी और आलसी हो गए । जो खड्ग व्रती थे, वे नारी के कटाक्षों के शिकार हो गए ।

पुरु—क्षत्रियों को सेना से निकालकर गांवों में खेती करने भेज दिया जाय, और उनकी जगहों में सेना में किसानों को भरती किया जाय । क्यों विचित्रे !

विचित्रा—कौन क्षत्रिय है ?

पुरु—समाज की भुजा, प्रजा का रक्षक, विश्व में न्याय और शान्ति को फैलाने वाला, ऐसा क्षत्रिय यदि पतित हो जाय तो उसे वैश्य का काम दे दिया जाय ।

विचित्रा—वैश्य कौन है ?

पुरु—समाज का चौथा विभाग—उसका पेट । प्रजा के लिए अन्न उपजाना और व्यापार करना उसका मुख्य धर्म है । ये चारों वर्ण समाज के अंग-प्रत्यंग हैं । न इनमें कोई बड़ा है, न कोई छोटा, ये आपस की सेवा और सहयोग से जीवमात्र का कल्याण साधते हैं ।

दूत—लेकिन महाराज अब उनमें बडी फूट हो गई, ऊंच-नींच का भाव फैल गया । अनाचार, अत्याचार और भ्रष्टाचार की बन आ गई । ब्राह्मण लोभी, क्षत्रिय कामी, वैश्य झूठा और शूद्र इन तीनों के पाप से दबाया जा रहा है । प्रजा में त्राहि-त्राहि मच गई ।

पुरु—समाज के इन चारों भागों में से किसी एक के बिगड़ जाने पर सभी उलट-पलट जाते हैं । [दूत से] तुरंत ही राजधानी को दौड़ जाओ और जो कहा गया है वह जाकर महाराज से निवेदन करो । शूद्र के भीतर ब्राह्मण की ज्योति जगा दी जाय और क्षत्रिय

का हाथ खड्ग पर से हटाकर हल की फाली पर रख दिया जाय। जाओ सब ठीक हो जायगा।

दूत—जो आज्ञा। [हाथ जोड़कर चला जाता है।]

पुरु—गुरुदेव।

गुरुदेव—[नेपथ्य से] गुरुदेव ? गुरुदेव नहीं हूं मैं। मैं झाड़ू दे रहा हूँ यहां।

पुरु—क्यों ?

गुरुदेव—[नेपथ्य से] मैंने आपका न्याय सुन लिया। यहां कूड़ा भी तो इतने दिनों से जमा हो गया है।

पुरु—दास-दासियां जो थीं।

गुरुदेव—सबके सब चली गईं।

पुरु—कहां ?

गुरुदेव—राजधानी को। राजनर्तकियां तोड़ ले गईं सबको। कहती थी, यह हमारी ही सेवा को आई थीं, हमारे ही साथ जावेंगी।

पुरु—तो क्या होगा फिर ?

गुरुदेव—[झाड़ू लेकर आता है।] क्या फिकर है आपको। झाड़ू भी गुरुदेव देगा, बर्तन भी मलेगा और कपड़े भी धोवेगा। [वहां पर झाड़ू देता है।]

पुरु—गुरुदेव काल की घड़ी पर किसकी दृष्टि रहेगी ?

गुरुदेव—महाराज ब्राह्मण का शूद्र हो जाना सरल है, गिरने में कोई देर नहीं लगती। शूद्र कैसे ब्राह्मण हो जायगा ?

पुरु—धीरे-धीरे संस्कार पाकर, गिरना सरल है तो क्या चढ़ना कठिन है ? पन्द्रह दिन में क्षीण होकर चन्द्रमा के मुख पर कालिख पुत जाती है तो क्या पन्द्रह दिन में उसकी एक-एक कला बढ़कर पूर्णिमा नहीं हो जाती ? काल की घड़ी पर किसकी दृष्टि रहेगी ?

गुरुदेव—सूर्य भगवान की और उसकी गिनती के लिये यह पंचांग

तो है। [पंचांग दे देता है।]

पुरु—घड़ी और पहर कौन बतावेगा ?

गुरुदेव—छाती पर हाथ रखिए। [उनकी छाती पर उनका हाथ ले गाकर रखता है।] सुना महाराज ! घड़ी-पल यह बज रहे हैं। हं-हं-हं ! [बड़ी जोर से हंसता हुआ चला जाता है।]

पुरु—क्या हो गया आज गुरुदेव को ? मुझे संदेह होता है—

विचित्रा—महाराज, तुम समाज के कौनसे अंग हो ?

पुरु—मैं क्षत्रिय, उसकी भुजा हूं।

विचित्रा—[हंसकर] हं-हं-हं ! आज्ञा केवल मस्तक दे सकता। आपने भुजाओं से ब्राह्मण को कैसी आज्ञा दी ?

पुरु—ठीक है देवि, जब ब्राह्मण-रूपी मस्तक अपना धर्म छोड़कर गूंगा हो जाता है, तो हाथ को इशारा देना ही पड़ता है और जब हाथ अपना काम ठीक नहीं करते तो पेट सब कुछ करा लेता है। पेट के बिगड़ जाने पर, शूद्र अपनी मर्यादा छोड़ शीर्षासन से इन सबको रास्ते पर ले आता है। जब शास्त्र का कहना कोई नहीं मानता, तो शास्त्र से सब मन जाते हैं।

विचित्रा—मैं समझती हूँ, प्रजा की यह गड़बड़ किसी मनुष्य की करनी नहीं है, समय का प्रभाव है। क्षत्रिय विलासी हो गया, आपने यौवन उधार लिया। क्षत्रिय को गांव में भेजने का दण्ड दिया आपने, आप सबसे पहले उस दण्ड को भोगने यहां आ गये।

पुरु—मैंने यौवन विलास के लिये नहीं लिया है। पांचों कामबालायें दलबल सहित यहां से लौटा दी गई हैं।

विचित्रा—पांचो इन्द्रियां तो तुम्हारे ही पास हैं।

पुरु—सचमुच में वे पांचों कहीं जाकर भी नहीं गई हैं। वे सब की सब मेरे ही भीतर हैं। क्या करूं ? कहां जाऊं ? [इधर-उधर दौड़ता है।] गुरुदेव ! गुरुदेव !!

गुरुदेव—[नेपथ्य में] गुरुदेव नाम का कोई जानवर नहीं है यहां। जो था वह शूद्र हो गया।

पुरु—[निराश होकर] हे देवि, मैं तुम्हारी शरण हूं। इन इन्द्रियों में कैसे कामना की आहुति दूं ? तुम मेरी ज्योति हो, मेरी बुद्धि हो, मुझे मार्ग दिखाओ।

विचित्रा—मैं कैसे हूं तुम्हारी ? तुमने मुझसे विवाह ही कहां किया है ?

पुरु—गुरुदेव ! गुरुदेव ! कहां हो ? विवाह का मन्त्र पढ़ो, बाजे बजाओ, हमारा विवाह हो रहा है। गुरुदेव ! गुरुदेव !

विचित्रा—तट पर पानी की बूंदें गिनते-गिनते मैं समुद्र की लहरों पर वारुणी के साथ नाच रहा हूं। (घण्टा बजाकर) सावधान महाराज ! आपकी जवानी और मेरा जीवन दोनों एक साथ ही हाथ पकड़कर डूब गये, झगड़ा मिटा !

[पुरु और विचित्रा दोनों हाथ पकड़कर हंसते हैं।]

(यवनिका)

तीसरा अंक

[महाराज ययाति का वही राजभवन ! महाराज ययाति सिंहासन मे विराजमान् हैं। एक सैनिक मालती को वहां पहुंचाकर चला जाता है।]

मालती—[हाथ जोड़कर] महाराज की जय हो !

ययाति—[मालती को देखकर चौंकता है। सिर पर मुट्ठी रखकर आंखों पर ओट करता है।]

मालती – महाराज मुझे शर्मिष्ठा दासी—

ययाति—सबसे पहले अपनी भूल सही करो। शर्मिष्ठा दासी नहीं रहीं अब, वे राजरानी हैं।

मालती – राजरानी ही सही, उनसे नहीं, उनके सबसे छोटे पुत्र से मतलब है मुझे।

ययाति – [घबराकर] क्या मतलब है ?

मालती—वे राजरानी के पुत्र हैं और आप उन राजकुमार के पिता, उनके विरुद्ध मेरे अभियोग पर खुल सकेंगे आपके कान ?

ययाति—ययाति एक धर्मात्मा राजा है। जो न्यायदंड उसके हाथ में है, उसे लेकर वह अपने पराये का भेद-भाव नहीं मानता। एक अपराध पर मैं उसे एक वर्ष का देश निकाला दे चुका हूँ और यदि तुम्हारा अभियोग सत्य निकला तो उसका दन्ड बढ़ा देने में कोई संकोच क्यों हो मुझे ? कहो क्या कहना है तुम्हें ?

मालती—उन्होंने मुझे लूट लिया !

ययाति—असंभव ! विद्या, विनय और विवेक से भरा हुआ

वह पुरु, नहीं वह स्वप्न में भी किसी का नहीं लूट सकता। उसने क्या लूट लिया तुम्हारा ?

मालती—द्रव्य ? परिश्रम का तुच्छ मैल, नहीं, उससे अधिक मूल्यवान् वस्तु मेरे मन की शांति है, उन्होंने मेरे मन की शांति लूट ली।

ययाति—तुम्हारा साक्षी कौन है ?

मालती—मैं अपनी साक्षी आप हूँ।

ययाति—वह नहीं मानी जाती।

मालती—तो उन्हीं से पूछा जाय। उन्होंने मुझे धोखा दिया है या नहीं। एक किसान की कन्या से झूठे विवाह की प्रतिज्ञा करना क्या उसकी शांति लूट लेना नहीं है।

ययाति—लेकिन वह तो देश निकाले का दण्ड भोग रहे हैं, मैं तुम से कह चुका हूँ।

मालती—महाराज, आप धर्मात्मा हैं।

ययाति—क्यों तुम्हें कोई संशय है ! [सिंहासन पर से उतरता है।]

मालती—आप ही महाराज ययाति भी हैं ?

ययाति—[उसके निकट आकर] हां तुम्हारी आंखों के धोखे के लिए अवश्य ही ययाति हूं। इस राजभवन की दीवारों के जोड़ बड़ी दूर-दूर तक हैं। इस लिए सत्य तुम्हारे कानों में कहूंगा। [मालती के कान में कुछ कहता है। पृष्ठभूमि में तुमुल कोलाहल।]

मालती—प्राणनाथ ! [ययाति के चरणों में सिर रखती है।] प्राणनाथ ! सिर उठाकर धीरे-धीरे ययाति के बुढ़ापे को देखती है और वैराग्य से खिचकर अपने दोनों हाथों से अपनी दोनों आंखें ढक लेती है।] हां मुझे मालूम था यह भेद।

ययाति—कितने बताया ?

मालती—चैत्ररथ वन में उन्होंने बताया।

ययाति—फिर यहां तक आने का क्यों कष्ट किया ?

मालती—ऐसी अनोखी बात का बिना देखे कौन विश्वास कर लेता ?

ययाति—अब तो हुआ न विश्वास।

मालती—घृणा से मुंह फिरा लेती है।]

ययाति—मालती ! घृणा करने लगीं तुम मेरे बुढ़ापे से ? इसकी ओट में पिता की भक्ति से भरपूर तुम्हारा ही प्रिय पुरु बोल रहा है। केवल एक ही वर्ष की बात है।

मालती—महाराज, अब तुम्हारी आदत इस सिंहासन पर बैठने की हो गई। तुम्हारे दुर्ग की दीवारें बहुत ऊंची हैं, अनाज की हरियाली में छिपी हुई मालती को क्या तुम देख सकोगे ? नहीं, मैं जाती हूं।

ययाति—ठहरो, ठहरो मालती, केवल समय ही इसका उत्तर देगा। ठहरो !

मालती—मैं गंगा स्नान के लिये अपने परिवार वालों के साथ आई हूं। अधिक समय तक इन राज भवनों के फेर में नहीं पड़ सकती।

ययाति—मालती, एक प्रार्थना है। मेरे और महाराज के जीवन का यह सत्य सबसे छिपाकर रख दिया गया है।

मालती—मैं किसी पर क्यों प्रकट करूंगी ? ओह ! किस तरह मेरे प्रेम के दो टुकड़े कर दिए गए, शरीर कहीं और आत्मा कहीं। आंखें मुझे उस निर्जन में पुकार रही हैं, मैं वहीं जाऊंगी। राजभवन की इन दीवालों में—नहीं, नहीं, किसान-कन्या राजा को प्यार नहीं कर सकती। आप राजसिंहासन में, आपके सिर पर राज-मुकुट है, आप महाराज हैं, आपको देखकर मुझे डर लग रहा है। मैं चली जाती हूं। [तेजी से चली जाती है]

[कोटपाल हथकड़ियों में दो विद्रोहियों को पकड़कर लाता है।]

कोटपाल—महाराज, ये दोनों विद्रोही पकड़ लिए गए। इन्होंने राजाज्ञा के विरुद्ध लोगों को भड़काया कि तलवार छोड़कर हल चलाने को तैयार न हों।

ययाति—क्यों ?

विद्रोही१—महाराज, वह नीच पेशा है।

ययाति—जो पेशा अन्न उपजा कर सारी प्रजा के प्राण बचाता है, उसे नीच पेशा कहते हो। कोई भी पेशा नीच नहीं है। सारा समाज चार भागों में बटा हुआ है—सिर, हाथ, पेट और पैर। मानते हो यह बात ?

विद्रोही२—लेकिन महाराज यह बराबर तो नहीं हैं। आपने सिर को सोने का मुकुट पहनाया है लेकिन पैर को चमड़े का जूता।

ययाति—यह उनके आदर या अनादर के लिए नहीं है। पैर को कीचड़, पत्थर और कांटों के बीच से चलना पड़ता है। इसलिए उसकी रक्षा को उसे चमड़ा पहनाया गया है और जब राजा लड़ाई के मैदान में जाता है तो क्या चमड़े और लोहे का बना हुआ कवच सिर में नहीं बांधता ?

विद्रोही१—सिर को क्या बढ़िया-बढ़िया भोजन खिलाए जाते हैं, पैर बिचारे को कुछ भी नहीं।

कोटपाल—अशुद्ध तर्क मत दो, तुम महाराज के सामने खड़े हो।

ययाति—पैर छोटा है, उसका कोई मूल्य नहीं है तो क्या कोई उसे कटा देने को तैयार हो जाता है ? पैर अगर चलना छोड़ दे तो पेट कैसे खावेगा ? पेट अगर कुछ खावे नहीं तो कैसे शरीर में शक्ति होगी ? शरीर में शक्ति के संग्रह से ही तो फिर सिर अपना भला-बुरा सोचेगा।

विद्रोही२—यह ठीक है महाराज, लेकिन यह आप सिर की

जगह पैर और पेट की जगह हाथ जोड़कर जो प्रजा की नई शकल गढ़ रहे हैं, यह कहां तक सही दिखाई देगी ? आपके चापलूस मन्त्रियों ने कभी इस पर विचार नहीं किया और आपने शास्त्र की मर्यादा के टुकड़े-टुकड़े कर रख दिये।

ययाति—शास्त्र की मर्यादा स्वयं जनता ने तोड़ी है। ब्राह्मण निर्लोभ थे, उनके रहन-सहन में सादगी थी। वे किसी वस्तु का संग्रह नहीं करते थे, पैसे को छूना पाप समझते थे। आज वे लोभी हो गए, रहने को महल ढूंढते हैं। उन्होंने अपनी समदृष्टि खो दी, समाज में ऊंच नीच का भाव पैदा कर दिया। शूद्र को अपने अंग का टुकड़ा नहीं समझा, उसकी छूत माननी आरम्भ कर दी।

विद्रोही१—ब्राह्मण तो अवश्य पतित हो गया महाराज, लेकिन हम तो क्षत्रिय हैं। देश की खातिर हमने बड़ी-बड़ी लड़ाइयां लड़ी हैं। भारी-भारी त्याग किए हैं। जन्म भर की इस राष्ट्र की सेवा का फल आज आप यह देते है कि हम गांवों में जा बसें।

विद्रोही२—जन्मभर जिन्होंने मूंछें मरोड़ तलवारें चलाई हैं, आज आप कहते हैं वे बैलों की पूंछें मरोड़ हल चलावें। दुश्मनों के घमंड को चूर-चूर कर धरती माता पर जिन्होंने अपने विजय के झंडे गाड़े हैं, आज आप कहते हैं वे उसकी मिट्टी खोद अधिक अन्न उपजावें।

ययाति—अन्न नहीं उपजाया जायगा तो प्रजा खायगी क्या ? इतिहास के ये पुराने पृष्ठ लौटने से कोई लाभ नहीं है। समाज के एक वर्ण के बिगड़ते ही सब वर्णों में बुराई आ जाती है।

विद्रोही१—ब्राह्मण के अपराध पर क्षत्रिय को दंड। यह कैसा न्याय है महाराज ?

ययाति—क्षत्रिय क्या विलासी नहीं हो गया ? प्रजा की रक्षा जिसका पवित्र व्रत था, उसे भूल गया वह। वह कामी, कायर और

आलसी हो गया। वह कर्त्तव्य की बलि देकर घूस खाने लगा। तुम तुम कहते हो क्षत्रिय निर्दोष है? राजा ने समाज के संस्कार के लिए वर्णों में हेर-फेर किया और तुम प्रजा में राजद्रोह फैला रहे हो? कोटपाल! इन्हें गांव में पहुँचाओ। इनकी नाक में छेद कर उसमें डोरा पहनाया जाय और बैलों के स्थान पर इन्हें जोता जाय। जरा भी इनके पैर रुकें तो पीठ पर कोड़े बरसाये जायें।

कोटपाल—जो आज्ञा। चलो। [दोनों को ले जाता है।]

प्रहरी—[आकर] महाराज, महारानी देवयानी और शर्मिष्ठा आपके दर्शन के लिए प्रवेश चाहती हैं।

ययाति—नहीं प्रहरी, मास में केवल एक ही बार उनसे भेंट करने का नियम है। अभी पिछले पखवारे में वे दोनों आकर मिल चुकी हैं। फिर उनको ऐसी आवश्यकता ही क्या है? उनके सुख-सुभीते का सारा प्रबन्ध उचित रीति से किया गया है। जाओ उनसे कह दो महाराज को राज-काज से अवकाश नहीं है। जो उन्हें कहना हो वे लिखकर मन्त्रियों द्वारा भेजें।

प्रहरी—महाराज, मैं ऐसा निवेदन कर चुका हूं।

ययाति—राज्य में अनेक प्रकार से अशांति बढ़ रही है। एक ओर ब्राह्मणों का विप्लव बढ़ रहा है, दूसरी तरफ क्षत्रियों का राजद्रोह। हमने सुना है इस आग पर इन दोनों रानियों ने पंखे किए हैं।

[दोनों रानियां झपटती हुई चली आती हैं।]

देवयानी—यह क्या महाराज? समझकर आपको मुख खोलना चाहिए।

शर्मिष्ठा—हमने आपकी प्रजा मे कौनसा विद्रोह फूंका है?

ययाति—हूं ऽऽ देखता हूँ महारानी देवयानी की संगति में तुम कुछ ही दिनों में बड़ी तेजस्विनी हो उठी हो। प्रहरी, ये दोनों

बिना मेरी आज्ञा के कैसे घुस आईं ?

प्रहरी—मैं क्या जानूं महाराज ? [हाथ जोड़कर] आइये आप बाहर आइये, मैं पहले महाराज से पूछ लूं ।

देवयानी—तुम महाराज से पूछने वाले कौन हो ? यह राजभवन हमारा है । हम महारानी हैं । अपने घर में हम किसके अतिथि हैं, जो तुम महाराज से हमारे लिये आज्ञा मांगोगे ।

शर्मिष्ठा—बरसों इस राज-भवन को झाड़-पोंछ कर मैंने सजाया और संवारा है । आज जब इसकी मालकिन बनने का समय आया है तो आपके प्रहरी को यहां आने के लिये हाथ जोड़ने पड़ेंगे ?

ययाति—प्रहरी, इनसे जाओ कह दो ।

प्रहरी—[हाथ जोड़कर] महाराज, ये महारानी हैं ।

ययाति—महारानी हैं तो क्या हुआ ? प्रजा की भलाई ही राजा का सबसे बड़ा इष्ट है, अगर महारानी उसमें चोट पहुँचाती हैं तो वह अपने पद से गिर जाती हैं । मैं तुझे आज्ञा देता हूं—जब तक प्रजा का मंगल उसकी आज्ञा में है, तब तक राजा की आज्ञा से बढ़कर दूसरी आज्ञा नहीं है, इसलिये इन्हें यहां से बाहर कर ।

प्रहरी—[डरते हुए रानी से हाथ जोड़कर] जाइए आप लोग यहां से पधारिये ।

ययाति—शस्त्र हाथ में उठा ! पैर जमा कर रख ? ध्वनि में कुछ कड़क पैदाकर तेजस्विता से काम ले ! तू राष्ट्र की सबसे बड़ी आज्ञा का वाहक है ! तेरी वाणी में मैं बोल रहा हूं ।

[प्रहरी हौसला बांधकर-ढाल-तलवार दोनों बढ़ा रानियों की ओर बढ़ता है । दोनों रानियां उसे आंखें दिखाती हैं । वह महाराज की ओर देखता है । महाराज उसे इशारा करते हैं, वह फिर रानियों की तरफ बढ़ता है ।]

प्रहरी—म-म महाराज की आज्ञा-न-नहीं—[बोल और

चाल दोनों में लड़खड़ा उठता है।

दोनों रानियां- [हंस पड़ती हैं।] हं हं हं !

ययाति—[क्रोध से] देखता क्या है ? हाथ पकड़कर बाहर निकाल दे। यह मेरा रनिवास नहीं है । मैं इसे न्यायालय बना चुका ! जा ! [उसे आगे को धक्का देता है।]

प्रहरी—नहीं महाराज ! [हाथ से ढाल-तलवार दोनों गिरा देता है।]

ययाति—क्या तू नया ही गांव से आया है ?

प्रहरी—हाँ महाराज, अभी तक हल जोतता था । ढाल-तलवार अभी हाल में पकड़ी है।

ययाति—अच्छा दृढ़ता से पकड़। तेरे ही पैदा किए हुए अन्न को खाकर यह तलवार पकड़ी जाती थी। विश्वास को ऊंचा कर, नीयत साफ रख, डर निकल जायगा, दृष्टि जमाकर रख, यह तलवार क्या वस्तु है, मनुष्य की पकड़ में आकाश का वज्र आ सकता है। उठा शस्त्र।

प्रहरी—हां महाराज ! [अपनी कमर बांधता है।]

देवयानी—महाराज ! देखा आपने ? आपके सारे राज-काज की यही दशा हो रही है। चुटिए की जगह जूता और तलवार के स्थान में तराजू रखकर कैसे काम चले ? प्रजा में क्यों न गड़बड़ हो ?

ययाति—वर्णों की उलट-फेर से तुम्हारा मतलब है ?

देवयानी—हां-हां-हां संस्कार भारी चीज है । उसकी जीवित गवाही यह किसान का बेटा क्यों न देवे ? क्षत्रिय के संस्कार कहीं से उठा लाने की वस्तु हैं क्या ?

ययाति—और तुम ब्राह्मण की बेटी, तुम्हारा वर्ण बदल सकता है ? दूसरे का क्यों नहीं ? मैं पूछता हूं क्या ब्राह्मण के घर में सब के सब पंडित ही पैदा होते हैं या क्षत्रिय की संतान सब बलवान

ही होती है। संस्कार जन्म का लेखा नहीं है, कर्म की रेखा है और काम को काम ही सिखाता है। काम करते-करते ही आ जाता है।

देवयानी—सीखे हुओं से उनका काम छीन कर उन्हें दूसरे काम में लगा देना और उनकी जगह नौसिखुओं को भर देना यह कहां की राजनीति है? आपके इस अंधेर से प्रजा में जो गड़-बड़ फैल गई है, इन हल चलाने वालों के रोके न रुक सकेगी वह।

ययाति—तुम रोक सको तो तुम्हारे लिये यह सिंहासन खाली कर दिया जाय।

शर्मिष्ठा—जो रोक सकते थे, उन राजकुमारों को तो आपने कारागार में बन्द कर रखा है।

देवयानी—उन्हें मुक्त कर देखिये फिर वे क्या कर सकते हैं?

ययाति—वे अगर इस समय मुक्त भी होते तो क्यों नहीं और क्षत्रियों की तरह गांव में खेती करने भेज दिये जाते?

शर्मिष्ठा—क्या आप समझते हैं सब क्षत्रिय गांव में जाकर खेती करने लग गये हैं?

ययाति—हां-हां मेरे मन्त्रियों ने शास्त्र और विधान के बल पर सबको गांवों में भेज दिया है।

शर्मिष्ठा—[हंसती है] हं-हं-हं! भेज दिया होगा महाराज, पहुंच भी गये होंगे।

देवयानी—और ये मन्त्री खेती करने कब जावेंगे?

ययाति—कैसी मूर्खता की बात करती हो? मन्त्री चले जांय, राजा चला जाय? क्यों चले जांय? तलवार से भूमि खोद कर हम चारों दिशाओं में विधान का बीज बोते हैं। हम विधान के विधायक हैं, हम उसकी पकड़ में नहीं आ सकते। आंख अपने को नहीं देखा करती, समुद्र पानी नहीं पिया करता।

शर्मिष्ठा—लेकिन जिन क्षत्रियों को आप वैश्य बना कर गांवों

में खेती करने के लिये भेज रहे हैं, क्या आप समझते हैं वे हल चला रहे हैं ?

ययाति—क्यों, ऐसा क्यों नहीं हो रहा है ?

शर्मिष्ठा—ऐसा नहीं हो रहा है। क्षत्रिय यहां से गांवों में जाकर किसान बन रहे हैं और आपकी सेना में भरती होने के लिये किसानों की आवश्यकता पड़ती है तो वही किसान बने हुए क्षत्रिय नाम बदल कर अपनी जगहों में आ जाते हैं।

देवयानी—महाराज ! क्यों न हो ? दीप स्थाने दीप ! दीपक फिर अपनी जगह में आ जाता है।

ययाति—झूटी बात ! यह प्रहरी कहां से आया है। क्यों रे ?

प्रहरी—हां महाराज, अब बांध ली मैंने कमर। जो आज्ञा।

देवयानी—यह नमूना केवल आपको दिखाने के लिये था। हाथी दूसरे ही दांतों से चबाता है।

ययाति—[सिंहासन से क्रोधित हो उतरता है।] मैं इसकी जांच करूंगा।

शर्मिष्ठा—आपको सच्चाई का पता ही न लग सकेगा।

ययाति—क्यों नहीं लगेगा ?

देवयानी—आपका अपने को महाराज समझ लेने से क्या होता है ? आपके दुर्ग की दीवारें शत्रु के लिये अभेद्य हैं और ये चाटुकारी के आवरण आपके लिये। तमाम पदाधिकारी ऊपर से नीचे तक आपस में मिले हुये हैं। सच्चाई उनके बीच से निकल कर आपको नहीं दिखाई दे सकती।

शर्मिष्ठा:—पुत्रों को कारागार से बाहर निकालो, तो सच्चाई का पता चले।

ययाति—बेटों को बन्धन से छुड़ाने का उपाय तो बड़ा अच्छा है।

देवयानी—मुक्त कर रखा है वह कुपूत।

ययाति—उसे देश निकाला तुम्हीं ने दिला रखा है।

देवयानी—झूठी बात है। उसके भोग-विलास के लिये सारे सामान यहां से जाते हैं। उसके मनोरंजन के लिये राजनर्तकियां भी गई हैं।

ययाति—नहीं, उसके पहरे के लिये थे वे सब। उन्हीं के लिये सारा सामान जाता था। अब कोई भी नहीं है वहां गुरुदेव ने सारा दलबल यहां लौटा दिया है। क्या तुम्हें यह बात ज्ञात नहीं है। देश निकाला पाया हुआ वह राजकुमार, जीवन के सुख-भोगों को तुच्छ मानकर योग की साधना में लगा हुआ है।

देवयानी—हां हमें यह भी पता है। एक अप्सरा को साथ लेकर उसकी साधना चल रही है।

ययाति—गुरुदेव साक्षी हैं।

शर्मिष्ठा—वे स्वयं वारुणी के प्रवाह में बह गये!

ययाति—चुप रहो! हटो निकलो यहां से। [दोनों को क्रोध में भरकर धक्का देता है।] प्रहरी! देखता क्या है? खड्ग में लपट पैदा कर इसका छिलका उतार कर फेंक दे। [तलवार नंगी कर प्रहरी के हाथ में देता है।] केवल एक धर्म ही राजा का सगा-सम्बन्धी है, और कोई नहीं। उसे जो तोड़ देना चाहता है, तू इस खड्ग की धार से उसके रक्त की गर्मी देख!

देवयानी—[नेपथ्य में] नहीं बहन शर्मिष्ठे! महाराज क्रोध में हैं। लौट आओ।

प्रहरी—[तलवार पकड़ कर साहस के साथ बाहर जाता है।]

[कोटपाल के साथ दो प्रहरी, चार अपराधियों को पकड़कर लाते हैं। महाराज सिंहासन पर जाकर बैठते हैं।]

कोटपाल—महाराज, ये चारों अपराधी उपस्थित हैं। [एक

ताड़पत्र पर देखते हुए पहले से ।] क्या नाम है तुम्हारा ?

अपराधी१—धर्मदास ।

कोटपाल—[ताडपत्र में देखकर] इसका नाम धर्मदास है महाराज ।

ययाति—इसके माता-पिता ने इसका यह नाम रखते समय क्या कभी सोचा होगा हमारा बेटा धर्म की ऐसी सेवा करेगा ।

अपराधी१—[बड़े गौरव के साथ] महाराज, यह नाम मेरे माता-पिता का नहीं, मेरा अपना रखा हुआ है ।

ययाति—तब तो तुम्हें ही बधाई देनी चाहिये । कोटपाल क्या अपराध है इसका ?

कोटपाल—महाराज, यह दूध में पानी मिलाकर प्रजा को ठगता है । कई बार इसे क्षमा किया गया, लेकिन मानता ही नहीं ।

ययाति—क्यों जी धर्मदास ! क्या यह सच है ?

अपराधी१—सिर पर भगवान्, नीचे धरम सामने आप, पीछे आपके कोटपाल, दाहनी तरफ आपका दंड बांई तरफ आपका कारागार, झूठ किधर से बोलूं महाराज ! नहीं, मैं दूध में पानी नहीं मिलाता ।

कोटपाल—यह सरासर झूठ बोलता है महाराज, मैंने उस दूध को भी देखा है और चखा भी है । उसे दूध कहना गौमाता का अपमान करना है और उसे पानी कहना धरती-माता का ।

ययाति—क्यों जी धर्मदास ? कोटपाल से क्या तुम्हारी कोई शत्रुता है ?

अपराधी१—नहीं महाराज ।

ययाति—फिर क्या बात है ?

अपराधी१—बात जो भी हो सब आप जानें । मैं तो एक ही खरी बात जानता हूँ । जंगल में जितना भी पानी पीकर गौमाता

दूध पतला कर देती होंगी, वह मेरे बसकी बात नहीं है। मैं अपनी कहता हूँ—महाराज, दूध में जो एक बूंद भी पानी मिलाता हो, उसका सर्वनाश हो जाय !

ययाति—धर्मदास, दूध में तुम एक बूंद भी पानी नहीं मिलाते, मैंने मान ली यह बात। एक और सवाल का जवाब दो, पानी में दूध मिलाते हो।

अपराधी१—महाराज ! महाराज ! [हाथ मलकर सिर नीचा कर लेता है।]

ययाति—उत्तर दो धर्मदास, चुप क्यों हो गये ? कितने पानी में कितना दूध मिलाते हो ?

अपराधी१—अपराध क्षमा हो महाराज।

ययाति—कोटपाल, यह वैश्य वाणी के कौशल से प्रजा को ठगता है, शासक को धोखा देता है। वह राजा की आंख में ही धूल नहीं झोंकता, भगवान् को भी अन्धा समझता है। खड्ग की धार से इसके दोनों हाथ उड़ा दिये जांय, यह शायद बहुत कठोर दंड हो जायगा, इसके दोनों हाथों से खड्ग की धार उड़ा दी जाय।

कोटपाल—[ताड़पत्र पर अंकित कर] ठीक है महाराज।

अपराधी१—दया, दया महाराज, मेरे बाल-बच्चे भूखे मर जावेंगे।

ययाति—इसके बाल-बच्चो को कमाई करने तक राजकोष से मदद दी जायगी।

कोटपाल—[ताड़पत्र पर लिखता है।] प्रहरी, इसे ले जाओ कारागार में। [प्रहरी उसे ले जाता है।] कोटपाल—[दूसरे अपराधी से] क्या नाम है तुम्हारा ?

अपराधी२—मेरा नाम पुण्यवर्धन है।

ययाति—बहुत सुन्दर ! क्या पुण्यवर्धन किया है आपने ?

कोटपाल—[ताड़पत्र में देखकर] महाराज, इन्होंने घी मे चर्बी मिलाकर जनता को लूटा है।

ययाति—धन्य हो पुण्यवर्धन ! घी में चर्बी नहीं, चर्बी में घी मिलाया होगा।

अपराधी२—हरे राम, हरे राम !

कोटपाल—महाराज, नीचे के न्यायालय में इसका अपराध सिद्ध हो चुका है और इसे दण्ड भी मिल चुका है। आपसे दया की प्रार्थना के लिये इसे अनुमति दे दी गई है।

अपराधी—महाराज, मैंने उतनी बड़ी गोशाला खोल रखी है।

कोटपाल—महाराज, गोशाला की आड़ में ही यह अपना शिकार खेलता है।

ययाति—पुण्यवर्धन, तुम्हारे इस धन की तृष्णा को धिक्कार है। प्रजा को लूटकर संपत्ति जमा करना वैश्य का धर्म नहीं है। वह प्रजा का पोषक है, शोषक नहीं। कोटपाल, इसे क्या दण्ड मिला है ?

कोटपाल—इसका एक हाथ और एक पैर काट गले में रस्सी पहना इसे जानवरों की तरह राज्य में घुमाया जायगा, खाने के लिए घास की कुट्टी और खली मिलेगी।

अपराधी—दया ! दया !

ययाति—केवल इतनी ही। यदि इसके बाल-बच्चे हों तो राज से उनको मदद दे दी जायगी बस और कुछ नहीं। समाज में इस प्रकार भ्रष्टाचार फैलाने वालों को कठोर दण्ड देना ही चाहिये।

कोटपाल—प्रहरी ! इसे भी ले जाओ।

[प्रहरी उसे भी ले जाता है।]

ययाति—[तीसरे से] और तुम्हारा नाम ?

अपराधी३—महाराज, मेरा छोटा सा नाम धूम्राक्ष है।

ययाति—कोटपाल, इनका कीर्त्तन करो।

कोटपाल—महाराज, यह अन्न का व्यापार करता है। अनाज नापने का जो बर्तन है, उसका तला खिसकने वाला बना रखा था इसने।

अपराधी ३—महाराज, उसका तला टूट गया था।

कोटपाल—झूठी बात! जान बूझकर ही वैसा बनाया गया था वह। जब यह किसानों से अनाज लेता था तो तले को नीचे जमा देता था कि अधिक अन्न ले सके और जब यह गृहस्थियों को अन्न देता था, तो तले को ऊपर कर लेता था कि उन्हें कम अन्न पहुँचे।

ययाति—इस प्रकार दोनों ओर से इसने मेरी प्रजा का पेट काट दिया, धूम्राक्ष! इधर देखो, न्याय कहता है, तुम्हारी दोनों आंखों में में लोहे की दो सीकें डाल कर खोस दी जायं। कोटपाल इसे यही दंड दिया जाय। इसके आश्रित कौन-कौन हैं?

कोटपाल—कोई नहीं महाराज!

ययाति—फिर किसके लिए इसने धन की दीवारें चुनीं। इसकी तमाम सम्पत्ति राजकोष में जमा होकर दीन-दुखियों को बांट दी जाय और इसे भीख मांग-मांगकर जीवन बिताने को छोड़ दिया जाय। इसे भी ले जाओ।

[प्रहरी तीसरे अपराधी को भी ले जाता है।]

कोटपाल—[चौथे अपराधी को सामने कर] महाराज इनका नाम भूधर अग्निवेदी है। राजधानी से सौ योजन दूर इन्होंने निर्जन में अपना आश्रम बना रखा था। कुटी के बाहर वेद मन्त्रों का हल्ला करने के लिए इन्होंने कुछ चेले पाल रखे थे। स्वयम् यह कुटी के भीतर अग्निहोत्र करते थे। ये बालब्रह्मचारी हैं।

ययाति—फिर ऐसी निर्दोष आत्मा को क्यों कारागार के

भीतर ठूंस दिया।

कोटपाल—इनकी आहुति के पदार्थ तिल और आज्य नहीं थे।

अपराधी४—अन्नदाता, मैं पारा फूंकता था, औषधि बनाने के लिए।

कोटपाल—नहीं महाराज, इसके आश्रम में गली हुई धातु, अनेक ढले हुए सिक्के तथा उसके साँचे मिले थे।

अपराधी४—धर्मावतार, वह सब मेरे शत्रुओं ने वहां डाल दिए।

कोटपाल—यह झूठ बोल रहा है महाराज।

ययाति—बड़ी लज्जा की बात है। वीतराग तपस्वी का वेश और कर्म खोटे! तुम पंडित होकर ऐसे पाप में पतित हो गए। हे ब्राह्मण तू धरती का प्रकाश था! तू अपने ही अन्धकार में नष्ट हो गया! तू विश्व का आशीर्वाद था, आज एक-एक कण तुझे धिक्कार दे रहा है।

कोटपाल—इसके दोनों हाथ और नाक काट दिए जाने की आज्ञा हुई है, इसके मुख में कारिख पोती जायगी। एक प्रहरी इसके साथ किया जायगा। इसको राज्य भर में द्वार-द्वार जाकर अपने पाप का बखान करना पड़ेगा।

अपराधी४—दया, दया! महाराज मेरा एक ही हाथ काटा जाय।

ययाति—क्यों क्या तुम्हारे पाप-कर्म में दूसरे हाथ का साझा न था?

अपराधी४—महाराज, मैं ब्राह्मण हूं। भगवान् की माला जपने के लिए दाहिना हाथ छोड़ दिया जावे।

कोटपाल—जप होठों से होता है कि हाथों से। द्वार-द्वार अपने पाप का बखान करना ही तुम्हारा सबसे बड़ा जप है। उसी से

तुम्हारी आत्मा शुद्ध होगी।

ययाति—कोटपाल ले जाओ इसे भी।

कोटपाल—चल।

[एक प्रहरी के साथ कोटपाल उसे ले जाता है। एक गुप्तचर सिर से पैर तक एक लाल चादर में लिपटे अधपगले को लेकर आता है। उसका सिर घुटा है और उसने अपने एक हाथ में एक घण्टा भी छिपा रखा है।]

गुप्तचर—महाराज की जय हो।

ययाति—क्यों गुप्तचर ! यह किसे ले आए ?

गुप्तचर—महाराज, यह राजमार्गों पर लोगों की भीड़ जमाकर अजीब दीमानी बातें कर रहा था। लोग कहने को इसे अधपगला कह रहे हैं। कुछ सन्देह होने से मैं इसे महाराज की सेवा में लाया हूं।

ययाति—बड़ा विचित्र वेश है तेरा। क्यों रे ?

अधपगला—जो मुझे अधपगला कहता है, मैं उसे पूरा पागल कहता हूँ और जो मुझे पूरा पागल कहता है, मैं उसे अधपगला कहता हूं। दोनों का जोड़ डेढ़ होने से मतलब है।

ययाति—हैं कौन तू ?

अधपगला—मैं ? कुछ में से कुछ नहीं और सब में से सब हूं।

ययाति—बहुत ठीक ! वेदांती जान पड़ता है। आया कहां से है ?

अधपगला—जहां से तू आया है ? मुंह में दूध और मुट्ठी में हवा बांधे हुए।

गुप्तचर—[उसकी पीठ में हाथ मारकर] होश में होकर बोल, तू सम्राट के सामने खड़ा है।

अधपगला—खांसता है। कम्बल खोलकर फैलाता है, भीतर

से बिल्कुल नंगा, केवल एक चार अंगुल की कौपीन पहने दिखाई देता है। कम्बल फिर अच्छी तरह ओढ़ता है] महाराज के सामने खड़ा हूँ तो यह पहले ही क्यों नहीं बताया था ?

गुप्तचर—आंखें नहीं हैं क्या तेरी देखने को।

अधपगला—जाने दो फिर जो हुआ सो हुआ। [हाथ जोड़कर] जय हो महाराज की !

ययाति—कहां है तेरा घर।

अधपगला—जन्म के ऊपर और मौत के नीचे। एक नीचे की भूमि है, दूसरी ऊपर की छत ! अब चार दीवारों की असलियत समझिये, वे हैं—काम, क्रोध, लोभ और मोह। एक दरवाजे से उसके भीतर घुसती है भूख और दूसरे खिड़की से मैं रोज जंगल को जाता हूं। समझ गए महाराज। इस चौकी पर बैठ जाऊं मैं ? [चौकी पर बैठने लगता है।]

गुप्तचर—[डांटकर] नहीं !

ययाति—मुझे तो यह कोई योगभ्रष्ट साधक जान पड़ता है। कोई क्रिया बिगड़ गई इसकी। क्यों रे तू क्या काम करता है ?

अधपगला—यह खाल की धौंकनी चलाता हूँ दिन-रात। [जोर जोर से नाक बजाता है।] दाना पानी जो कुछ डाल देता हूं इसमें सब भस्म हो जाता है। मैं समझता हूं, मैं इसे चलाता हूं, यह कहती है, यह मुझे चला रही है। महाराज, आज इस झगड़े का आप न्याय कर ही दीजिये।

ययाति—लोग क्या कहते हैं इसे ?

गुप्तचर—इसके सबसे बड़े भक्त तो कहते हैं यह होने वाली बात सब बता देता है, कुछ समझते हैं—दूसरे के मन की बात पढ़ लेता है, कुछ बताते हैं इसे बड़ी दवाएं मालूम हैं। कुछ के विचार मे यह पागल है, कुछ की राय में घुटा हुआ। औरतो की मण्डली में बातें

करने में यह बड़ा प्रसन्न होता है।

ययाति—क्यों रे ! सच सच बता तू कौन है ?

अधपगला—जब बता ही दिया तो फिर और क्या बता दूं ? जब बता ही नहीं सकता तो फिर और क्या न बताऊं ? असल बात है सो बात की एक बात ! मैं क्या कहूँ ? जो आप समझते हैं, वही मैं हूँ और जो मैं समझता हूँ वही आप हैं। आपने मुझे देखा तो चाहे नहीं, मैंने अवश्य आपको देखा है।

ययाति—तुम दूसरे के मन की बात बता सकते हो ?

अधपगला—हां बता सकता हूं।

ययाति—बताओ मेरे मन में क्या है ?

अधपगला—आधा तीतर है, आधा मैं नहीं जानता।

ययाति—हंसी नहीं, सच-सच बताओ।

अधपगला—बता दूं आप बुरा तो नहीं मानेंगे ? [सिर के चारों ओर दाहिना हाथ घुमा ताली बजा फिर उससे नाक पकड़ प्राणायाम सा करता है कुछ देर] आपके मन में किसी की जवानी है।

ययाति—[घबराकर सिंहासन से उतर आता है।] ठहरो, ठहरो, योगिराज ! मेरे मन की नहीं, मेरे राज की एक बात बताओ। मेरे राज्य में जो वर्णाश्रम धर्म बिगड़ गया, उसे किसने बिगाड़ा ?

अधपगला—कौन बिगाड़ सकता है ? अपने आप। सैकड़ों वर्षों के व्यवहार से बर्तन घिस गए। पण्डित के वेश को दीमक चाट गई, सैनिक की तलवार में मोर्चा लग गया, वैश्य की तुला घिस गई, और सेवक की भावना में छेद हो गया।

ययाति—कैसे ठीक होगा ?

अधपगला—हो तो रहा है, उलेट व्यायाम से।

ययाति—लेकिन कुछ लोग इसका विरोध कर रहे हैं।

अधपगला—ऐसे लोगों का आदर सरकार कारागार में ठूंस

कर क्यों नहीं करते ? पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण । मुख पूरब है वही ब्राह्मण है—ज्ञान का सूर्य वहीं उदय होता है । दाहिना हाथ काम करते-करते जब थक जाता है तो बाए से किया जाता है । सूरज क्या नहीं बदलता अपने हाथों को । जाड़ों मे दक्षिण की तरफ खिसक जाता है तो गर्मियो मे उत्तर की ओर ।

गुप्तचर—महाराज, यह एक गाना भी गाते हैं ।

अधपगला—सुनेंगे आप ?

ययाति—क्यों नहीं ?

अधपगला—[कम्बल के भीतर से छिपी हुई घंटी निकालकर धीरे धीरे बजाता हुआ गाने लगता है ।] एक राजा के—[सहसा रुककर] आप भी तो राजा हैं ?

गुप्तचर—नहीं, आप महाराज हैं ।

अधपगला—तब बुरा मानने की कोई बात नहीं है । [फिर गाने लगता है ।] एक राजा के थीं दो—[फिर रुककर] महाराज आपके कितनी रानियां है ?

ययाति—तुम्हें क्या मतलब है ? समझ लो कोई भी नहीं ।

अधपगला—तब क्या खटका है ? [फिर गाता है ।]

राजा जी के थीं दो रानी,
बहरी एक, एक थी कानी ।
बहरी सोती फूल बिछाकर,
कानी रहती घर के बाहर ।
बहरी खाती मेवे मक्खन,
कानी चखती भूसी-चोकर ।
बहरी थी सीधी दासी-सी, कानी थी ओछी अभिमानी ।
राजा जी के थीं दो रानी ॥

124195

ययाति—[सोच में पड़ा अपने सिंहासन पर चला जाता है और गाल

पर हाथ रखकर सुनने लगता है।]

अधपगला—करती चौका बर्तन बहरी,
राजभवन की थी वह महरी,
कानी देख न सकती उसको,
दोनों मे रिपुता थी गहरी।
एक कर सका उन्हें न कोई, हार गए पंडित, गुरु-ज्ञानी।
राजा जी के थीं दो रानी॥

ययाति—गुप्तचर ! इसका गीत शायद देवयानी ने नहीं सुना। उसके पिता शुक्राचार्य काने हैं, वह न जाने इसका क्या अर्थ लगाती ?

अधपगला—काना बाप नहीं है, कानी रानी है। कोई है क्या यहां कानी रानी ?

ययाति – नहीं कोई नहीं है।

ययाति—अब नहीं रोकेंगे।

अधपगला—[फिर गाने लगता है।]

मिली एक दिन युवती सुन्दर,
राजा ले आया उसको वर,
जब सौतों ने उसको देखा,
एक हो गईं बैर भूल कर।
राजा छिपा महल में जाकर, जब दोनों ने भृकुटी तानी।
राजा जी के थीं दो रानी॥

ययाति—[उत्तेजित होकर] गुप्तचर, इस गीत से क्या ध्वनि निकलती है ?

अधपगला—[रुष्ट होकर गीत बन्द कर देता है।]

गुप्तचर—मुझे इतनी समझ कहां महाराज ? इसी लिये तो

इसे आपके पास लाया हूँ।

ययाति—जनता क्या कहती है इस गीत को सुनकर ?

गुप्तचर—कुछ कहते तो नहीं सुना, लेकिन वह बड़ी प्रसन्न होती है। ताली पीट-पीटकर फिर-फिर इससे दुहराने को कहती है।

अधपगला—अभी तो और भी है।

ययाति—गाते क्यों नहीं ?

अधपगला—डरता हूँ क्या किसी से ? [फिर गाता है।]

जब राजा ने द्वार न खोले,
और न कुछ उत्तर में बोले,
कानी ने षड़यन्त्र रचा तब,
साथ में अपने बहरी को ले।
आग लगाने दौड़ी कानी, बहरी भागी लाने पानी ॥
राजा जी के थीं दो रानी ॥

[एकाएक बाहर से आवाजें आती है—"आग ! आग ?
आग ! राजभवन में आग !"]

ययाति—हैं ! राजभवन में आग ! [सिंहासन से उतरता है]

अधपगला—[फिर गाने लगता है।]

आग लगाने दौड़ी कानी बहरी भागी लाने पानी।
राजा के थीं दो रानी ॥

[कमरे में धुंवा भरने लगता है। बाहर आग की
लपटें भी दिखाई देती हैं।]

गुप्तचर—[उठकर भागता है। चलिए, भागिए महाराज ! [कई प्रहरी भीतर आते हैं और चिल्लाते हैं। आग ! आग ! भागिए महाराज !" लेकिन ययाति कुछ भी नहीं घबराते और धीरज के साथ बाहर की ओर बढ़ती हुई आग को देखते हैं। अधपगले को छोड़कर सब महाराज के पास से भाग जाते हैं।]

अधपगला—ये सब भाग गये महाराज ? राजभक्ति दिखाकर चल दिए। आपके साथ मैं रहूंगा। मुझे भी बिल्कुल डर नहीं लगता।

ययाति—अच्छी बात है। ये द्वार बन्द कर दो, धुवां आ रहा है। एक बात तो बताओ तुम्हारे गाने के साथ ही यह आग कैसे लगी ?

अधपगला—[द्वार बन्द कर हसता है।] हं-हं-हं ! हं-हं हं ?

ययाति—क्यों, हसते क्यों हो ? क्या बात है ?

अधपगला - हं-हं-हं ! आप नहीं पहिचान सके मुझे अभी तक ?

ययाति—कौन हो तुम ?

अधपगला—तुम्हारा बड़ा पुराना साथी।

ययाति—[ध्यान से देखकर] कौन गुरुदेव !

गुरुदेव—हां।

ययाति—आपने यह कैसा वेश बना लिया ?

गुरुदेव—वेश बनाया नहीं है। ऐसा ही हो गया हूं। युग के प्रभाव से।

ययाति—चैत्ररथ वन से कब आये ?

गुरुदेव—हाल ही में।

ययाति—क्यों ?

गुरुदेव—बीमार हो गया। कुछ गड़बड़ चीजें खा-पी लेने से मस्तिष्क विकृत हो गया। कभी ठीक हो जाता है तो बीती बातें भी भूल जाता हूँ और कभी फिर बिगड़ जाता है तो भविष्य याद आ जाता है। लेकिन आप यहां से भागते क्यों नहीं ? मेरा भी भुर्ता बना देंगे क्या आप इस आग में भूयकर ?

[देवयानी और शर्मिष्ठा घबराहट में भरी दौड़ती हुई आती हैं।]

देवयानी—आग ! आग ! महाराज ? आपके भवन में आग !

शर्मिष्ठा—यह धुवां नहीं देख रहे हैं आप, ये आकाश को चूमती हुई अग्नि की लपलपाती हुई जीभें।

ययाति—मैं कहता हूं यह आग लगाई किसने ?

गुरुदेव—मैं कहता हूं लगाई बड़ी ने, बुझाई छोटी ने।

देवयानी—यह कौन है ? क्या बकता है ?

ययाति—गुरुदेव है यह ?

देवयानी—क्यों महाराज ! इस तरह प्राणों का मोह क्यों छोड़ बैठे हैं आप ?

शर्मिष्ठा—दौड़िए ! भागिए ! अभी आग इधर नहीं बढ़ी है। दोनों रानियां ययाति के हाथ पकड़ खींच ले जाना चाहती हैं।]

ययाति—छोड़ दो, छोड़ दो ! कोई भय नहीं है। मुझे इस विद्रोह का पता था। इसलिये मैंने चुपचाप इस महल की तमाम लकड़ी-पत्थर की धातु में बदल दी। आग अपने ही में बुझ जाएगी और इस भवन का बाल भी बांका नहीं हो सकता।

दोनों रानियां—[राजा का हाथ पकड़े चकित रह जाती हैं।]

गुरुदेव—[घण्टा बजाकर गाते हैं।]

राजा जी के थी दो रानी,
बहरी एक, एक थी कानी।

यवनिका

चौथा अंक

[चैत्ररथ वन की वही गुफा । कामदेव की मूर्ति के पास
पुरु पद्मासन में बैठा हुआ ध्यान कर रहा है ।]

विचित्रा – [नेपथ्य में गुरुदेव की तरह घंटा बजाकर] सावधान ! महाराज आपके यौवन के शेष महीने और आपके बुढ़ापे के शेष वर्ष, आज यह एक साथ ही डूब गए !

पुरु – [चौंककर आसन छोड़ उठ जाता है ।] हं-हं-हं ! गुरुदेव के धोके का जाल डाल रही हो तुम मेरे ऊपर ! विचित्रे ! झूठा ही एक काल का भय उपजा रहे थे गुरुदेव ! कामबालाओं को तुमने भगा दिया यहां से और वे ही गुरुदेव को भी भगा ले गईं ।

विचित्रा – [आकर] वे कैसे ?

पुरु – कामबालाओं के ही मनोरंजन के लिए यहां वारुणी आई थी । गुरुदेव उसी के स्वाद में रम गए । जब यहां समाप्त हो गई तो उसी के पीछे पागल होकर न जाने कहां को चल दिए ?

विचित्रा – देश और काल की ये दो चेतनायें कामनाओं के साथ ही जुड़ी हुई हैं । जब तुम्हारे मन से कामनायें जाने लगीं तो फिर काल की गिनती करने वाले गुरुदेव की ही यहां कौनसी जगह रह गई थी । उन्हें तो कामबालाओं के साथ जाना ही था ।

पुरु – विचित्रे ! मैं समझता हूं, जिस तरह पृथ्वी पर जल, जल में वायु, वायु में और तत्व ठहरे हुए हैं, इसी प्रकार वायु की इन्द्रिय में और इन्द्रियां ठहरी हुई हैं । जीभ की कामना स्वाद है । यदि हम स्वाद को जीत लें तो और इन्द्रियों की कामनाओं को

सहज ही जीत सकते हैं।

विचित्रा—ठीक है, एक जीभ को जीतने वाला पांचों इन्द्रियों के धोखे को जीत लेता है। जिसने भीतरी तमाम इन्द्रियां जीत लीं उसके लिए तीनों लोकों को जीत लेना कुछ भी कठिन नहीं है।

पुरु—स्वाद मनुष्य की एक बनावट का नाम है। राजधानी से जबसे हमारा सम्बन्ध छूटा है, वह बनावट भी दूर हो गई। जंगल के ये दो कंद-मूल खाकर जो सुख और चैन हमे मिला, वैसा कभी नहीं पाया।

विचित्रा—मैं तो समझती हूं, पृथ्वी तत्व को छोड़कर केवल जल तत्व पर भी हम जीवित रह सकते हैं।

पुरु—तुम्हारा मतलब दूध से है।

विचित्रा—नही बिल्कुल जल से। जल भी छोड़कर केवल वायु पर भी जी सकते हैं।

पुरु—तुम स्वर्गलोक की रहने वाली हो, इसी से ऐसा कहती हो। हम धरती पर के जीव स्वाद छोड़ सकते हैं, कंद-मूल तो चाहिये ही।

विचित्रा—मैं वन में जाकर ढूंढ लाती हूं। [एक डलिया उठाकर चली जाती है।]

[दूसरे द्वार से पूजा की थाली लेकर मालती आती है।
थाली में एक दीपक भी जला हुआ है।]

पुरु—मालती ! कितने महीने बाद तुम आज आई हो ? तुम्हारी राह देखते-देखते मेरी आंखें पथरा गईं।

मालती—बड़ी आशा तुमने मेरे मन मे उपजा दी।

पुरु—तुम कुशल-पूर्वक हो न ? तुम तो यहां नित्य ही आने का वादा कर गई थीं।

मालती—मैं तीर्थ यात्रा को चली गई थी। लेकिन यह क्या बात है ? सारा आश्रम सूना पड़ा है आज ? वे सब कहां चल दिए ?

पुरु—मैंने सबको यहां से भगा दिया, ऐसा तो नहीं कहूंगा। क्योंकि मैं उन सबको साथ लाया था। वे सब मेरी कामनाओं के पक्षी थे, मुझे चुग रहे थे। एक-एक कर उड़ गये सब।

मालती—[बड़ी आशा से भरकर] गुरुदेव !

पुरु—वे भी उड़ गये उनकी कोई आवश्यकता नहीं रही।

मालती—काल की गिनती।

पुरु—उसकी भी क्या आवश्यकता ?

मालती—तो क्या तुम अपने आप ही भीतर बोल रहे हो ? [पुरु की ओर बढ़ती है।]

पुरु—[पीछे हटते हुए] ठहरो मालती।

मालती—क्यों तुम इस धरोहर को छोड़ना नहीं चाहते ?

पुरु—वर्ष अभी पूरा ही कहां हुआ है ?

मालती—गुरुदेव की गवाही थी। उन्हें क्यों भगा दिया ?

पुरु—वे अपने आप भाग गए। सुन्दरि ! काल क्या किसी की गिनती पर अपने पैर बढ़ाता है ? तुम क्या समझती हो, काल की गिनती न हुई, तो तुम्हारे प्रियतम का यौवन मेरे पास ही धरा रह जायगा।

मालती—मैं जाकर उस राजा को देख आई ? जिसके बुढ़ापे में तुमने मेरे प्रियतम को बांध रक्खा है।

पुरु—तुम राजधानी में हो आईं ?

मालती—हां मैंने राजा के सामने अपना मामला भी रखा।

पुरु—उनके न्याय का तुम्हें विश्वास हुआ ?

मालती—उनका कैसा न्याय ?

पुरु—मैं समझता था, शायद तुम मेरे देश निकाले का दंड बढ़ाने गईं।

मालती—हूं ! क्यों न कहोगे ऐसा ? इसे सूने एकान्त में तुम्हें डर नहीं लगता ?

पुरु—क्या करूं ? तुम्हारा यह देवता तो है मेरा, साथी यह कामनाओं का राजा।

मालती—[मूर्ति की ओर जाती है।] तुमने अभी तक इसके आंखों की पट्टी भी नहीं खोली ? [पट्टी खोल पुरु की ओर पीठ किए मूर्ति की पूजा करती हुई] तुम्हारे खाने-पीने का यहां क्या प्रबन्ध है ?

पुरु—अपने देवता के खाने-पीने के बारे में पूछ रही हो क्या ?

मालती—हां।

पुरु—यह पत्थर का देवता अपना मुंह खोल नहीं सकता, भोजन के लिए।

मालती—फिर देखता कैसे है ?

पुरु—देखता भी नहीं।

मालती—देखता ही नहीं, तो पट्टी क्यों बांध दी तुमने इसके ?

पुरु—आज से खिलाऊंगा इन्हें।

मालती—मैं तुम्हारे भोजन के लिये भी पूछती हूं।

पुरु—तुम्हारे प्रियतम का यह शरीर—बड़ी ममता है तुम्हें इसकी। मालती केवल जंगल के कंद-मूल ही खिलाता हूं मैं इसे। क्या इसे तुम दुबला पा रही हो ? तुम्हें चिन्ता नहीं होनी चाहिये।

मालती—मैं अपने घर से नित्य दूध ला सकती हूं।

पुरु—लेकिन मैंने घी दूध का सेवन छोड़ दिया है। मेवे-मिष्ठान्न भी।

मालती—क्यों ?

पुरु—चित्त की एकाग्रता के लिए। कामनाओं की समाप्ति के लिए।

मालती—लेकिन यह शरीर मेरा है, तुम अपनी इच्छा से इसे भूखा नहीं मार सकते।

पुरु—मालती, शरीर का भोजन अन्न नहीं है।

मालती—फिर क्यों संसार भोजन करता है ?

पुरु—सुनो, एक भेद की बात कहता हूँ, भोजन शरीर का भोजन नहीं है—वह भोजन है कामनाओं का, वह भोजन है रोग का। बड़ी रक्षा से मैंने तुम्हारे प्रियतम की धरोहर संभाल रक्खी है।

मालती—नहीं दूध एक पवित्र पदार्थ है। उसे देना पड़ेगा तुम्हें।

पुरु—मैं नहीं जानता तुम यह कैसे अपने देवता की पूजा कर रही हो ?

मालती—नहीं सोच सकती किधर है मेरा देवता ? मेरी आंखों के सामने या मेरी पीठ के पीछे। [पूजा समाप्त कर पुरु की ओर मुख करती है और उसके पैरों पर सिर नवाती है।] मेरी ही पूजा के ये चरण क्योंकर नहीं है ? [सहसा भूमि पर किसी के पैरों के चिह्न देखती है।] लेकिन तुम तो कहते थे तुम्हारे साथ यहां और कोई नहीं ! यह किसके पैर का निशान है ?

पुरु—होगा, यहां से चली गई भीड़ में से किसी का ?

मालती—नहीं, यह बासी नहीं है।

पुरु—तो तुम्हारा ही होगा।

मालती—नही।

पुरु—तो फिर मेरा।

मालती—यह भी नहीं। कितना सुन्दर और कोमल ?

पुरु—[दोनों हाथों से मुंह ढक हंसता है।]

मालती—तुम हंस रहे हो। बताना पड़ेगा, इस मनोहर एकान्त में तुम अकेले नहीं रह सकते। बताओ कौन है तुम्हारे साथ ?

पुरु—बताता हूँ, सोच लेने दो। [सोचता है।]

मालती—इसमें सोचने की क्या बात है ? यह किसी पुरुष के पैरों की छाप नहीं है।

पुरु—हां, नारी की ही है।

मालती—[ईर्ष्या से] हैं नारी ! कौन है वह नारी और तुम अकेले ही उसके साथ इस आश्रम में रहते हो ?

पुरु—तुम्हारे इतने क्रुद्ध हो जाने की बात क्या है ? क्या यह आश्रम तुम्हारा है ?

मालती—[क्रोध के आवेश में पुरु को पकड़कर झकझोरती है।] मेरा मतलब इस आश्रम से है—यह शरीर। यह तुम्हारा शरीर क्या मेरे साथ वचन में बधा हुआ नहीं है ?

पुरु—जिसने यह प्रतिज्ञा की है, उसे तो तुम देख आई हो ?

मालती—मेरे इस हृदय से तुम दूसरे को कैसे प्यार कर सकते हो ? कौन है वह नारी ? मुझे दिखाओ, तुमने कहां छिपा रखा है उसे ?

विचित्रा—[एक द्वार से डलिया मे कंद-मूल लिए आकर झांकती है और फिर छिप जाती है।]

मालती—मैं पूछती हूं दूसरे के घर में किसी को बसाने का तुम्हें क्या अधिकार था ?

विचित्रा—[दूसरे द्वार से आकर कामदेव की मूर्ति के पास छिप जाती है।]

पुरु—बसाया किसी को भी नहीं। इस घर में बसी हुई तमाम कामनाएँ निकालकर बाहर कर दीं।

मालती—लेकिन यह चलती-फिरती औरत कौन है ?

पुरु—औरत नहीं वह मेरे मन की ज्योति है।

मालती—ज्योति क्या हुई ?

पुरु—वह मेरी गुरु है।

विचित्रा—[प्रकट होकर] क्यों, झूठ क्यों बोलते हो ?

मालती—[लौटकर विचित्रा को देखकर] कौन हो तुम ? देवी-सा तुम्हारा रूप है।

विचित्रा—मैं इनकी विवाहिता स्त्री हूं। [वहीं पर आ जाती है।]

मालती—[पुरु का हाथ पकड़कर] क्यों ? अब कहो।

विचित्रा—यह तुम्हारे कौन हैं ?

मालती—इनका यह शरीर, जिसमें इन्होंने तुम्हारा प्यार रख रखा है, उसे मैं अपना पति कहती हूं।

विचित्रा—इस सुन्दरी ने कभी झूठ नहीं बोला होगा। बड़े लंपट हो तुम ! मुझे नहीं बताया कभी।

पुरु—नहीं विचित्रे, मेरे शरीर में इनको अपने पति की ममता हो सकती है। लेकिन मैं जो यह बोल रहा हूं, वह एक स्वतन्त्र सत्ता है। सूक्ष्म ही स्थूल का मालिक है। कामना ही शरीर को चलाती है, इसलिए जिसकी वाणी उसका शरीर।

मालती—चोरी ! लूट ! डाका ! मेरा सब कुछ छीन लिया गया। छल ! कपट ! पाप !! अंधेर में कहीं की न रही। [रोने लगती है।]

विचित्रा—नहीं बहन, रोओ मत। [उसके कंधे पर हाथ रखती है।] मैं तुम्हारी सहायता करूंगी। कोई तुम पर अत्याचार न करने पावेगा।

पुरु—बात कुछ नहीं है विचित्रे ! राजकुमार पुरु ने कभी इस वन में आकर इस किसान की कन्या से प्रेम किया होगा।

मालती—फिर झूठ बोलते हो। प्रेम नहीं, उन्होंने विवाह का वचन दिया।

पुरु—वचन कहां दिया ? वचन मेरा है—ययाति का—मालती

भूलो नहीं।

मालती—लेकिन आज तो तुम इस शरीर को भी अपना ही बता रहे हो। गुरुदेव हर घड़ी तुम्हें इस शरीर पर की ममता से हटाते रहते थे। इसलिये तुमने उन्हें यहां से निकाल दिया।

पुरु—सुन्दरी धीरज रक्खो, वर्ष पूरा होने दो। पुरु को इसमें आ जाने दो तब जहां चाहो, तुम उसे ले जाना। अब तो कुछ ही दिन शेष हैं।

विचित्रा—महाराज, एक विनती है, आपके इस शरीर में वाणी किसकी है?

पुरु—महाराज ययाति की।

विचित्रा—मन?

पुरु—वह भी उन्हीं का।

विचित्रा—मन व्यक्ति का नहीं होता, मन कामनाओं का होता है।

पुरु—कामनाओं का ही सही, कामनायें ययाति की हैं।

विचित्रा—लेकिन ययाति के मन की समस्त कामनायें उड़ चुकी हैं।

पुरु—ययाति के मन की समस्त कामनाएं उड़ चुकी हैं? हां उड़ चुकी है। कैसा विचित्र और अद्भुत सत्य है यह?

विचित्रा—इसलिए इस शरीर मे ययाति का मन नहीं है।

पुरु—[बेचैन होकर इधर-उधर दौड़कर पुकारता है। ययाति! ययाति! कहां है ययाति? [अपने में टटोलता है।] यह वस्त्र है ययाति? नहीं। [उत्तरीय फेंक देता है।] फिर यह माला? [गले से माला उतारकर फेंकता है] नहीं। ये कुंडल भी नहीं। [दोनों कानों के कुंडल भी उतार कर भी फेंक देता है।]

ये वलय भी नहीं, ये कंकण भी नहीं ! [उन्हें फेंक देता है।] यह करधनी भी नही ! [उसे भी उतारकर फेंक देता है।] ये भुजायें, ये चरण, यह मुख, यह वक्षस्थल नहीं इनमें से भी कोई ययाति नहीं है। फिर कहां है ययाति ? पांचों इन्द्रियों के भ्रम में ? [गुफा के पांचों द्वारों को देखता है।] स्पर्श, रस, गंध, बिंदु और नाद। नहीं वहां भी नहीं। पांचों तत्वों के जल मे—वहां भी नहीं। विचित्रे ! तुम मेरी बुद्धि हो, तुम हो ययाति ?

विचित्रा—नहीं [पीछे हटती है।]

पुरु— महततत्व ! मेरे अहंकार ! [छाती में हाथ मारकर] क्या तुम में है ययाति ?

विचित्रा—कुछ नहीं, कोई नहीं, ययाति कहीं नहीं है।

पुरु—[सिर पकड़ कर बैठ जाता है।] सचमुच में ययाति कहीं नहीं है।

विचित्रा—[हाथ पकड़ कर पुरु को उठाती है।] इसलिये उठो, इस खाली घर में जब तक पुरु नहीं आ जाता क्यों नहीं इस कुमारी को अधिकार दे दिया जाय। सुन्दरी अपना हाथ इधर बढ़ावो, मैं तुम दोनों का विवाह करा देती हूं। [मालती का हाथ पकडकर दोनों को मिलाने लगती है।]

पुरु—यह क्या करती हो ?

विचित्रा—जब तुम इस देह मे अपनी कामनायें समाप्त कर चुके, तो फिर क्यों तुम्हें इसका अभिमान हो ?

पुरु—होना तो नहीं चाहिए।

विचित्रा—इसलिये तुमने मन से ऊपर बुद्धि में प्रतिष्ठा पाई है। बुद्धि से भी परे तुम अनन्त हो ययाति ! न तुम्हारा जन्म है, न विवाह, न मरण ! [धीरे-धीरे दोनों हाथ मिला देती है और भूमि पर पड़ी दीपक जलती हुई पूजा की थाली उठा लेती है।] ऐसे ही रहो, यह पूजा की सामग्री है। मैं तुम दोनों की आरती उतारूंगी।

[नेपथ्य में संगीत के साथ दोनों की आरती उतारती है।]
[परदा गिरता है और कुछ दिन का अवकाश दिखाकर शीघ्र ही उठ जाता है। विचित्रा गुफा के ऊपर को एक मार्ग पर जाती हुई खड़ी है। नीचे ययाति है। उसके समस्त आभूषण खुल चुके हैं। उसने एक गेरुवे रंग की धोती पहन रखी है]

पुरु—उधर कहां जा रही हो विचित्रे ! उधर नहीं है कोई मार्ग।

विचित्रा—दस-पांच बार पैर पड़ने से ही तो मार्ग निकल आता है। आज अब नीचे उतरने को मन नहीं कर रहा है। चिड़ियों की भांति एक डाली से दूसरी डाली, फिर इस अनन्त नीले विस्तार में खो जाना चाहती हूं। तुम्हारे सब आभूषण खुल पड़े !

पुरु—वे क्या कामनाओं के केन्द्र न थे ?

विचित्रा—मुझे भी ये बड़े भारी लगने लगे हैं। सहन ही नहीं हो रहे हैं। बहुत ढीले भी तो हो गए। खुल-खुल जा रहे हैं। मैं धरती पर से उठा-उठा कर इन्हें कब तक पहना करूं ?

पुरु—विचित्रे !

विचित्रा—लो यही है तुम्हारी विचित्रा। यह उसके गले का हार है। संभालो। [हार उतारकर फेंक देती है।]

पुरु—यह क्या कर रही हो विचित्रा !

विचित्रा—इन्हीं को पहनाकर तो तुमने मुझे सुन्दर बनाया था। [हाथ-पैर के आभूषण खोलती है।] लो यही हैं विचित्रा के बन्धन ! [आभूषण फेंकती है।]

पुरु—इनसे क्या करूं ?

विचित्रा—इनके लिये तुम्हारे मन में कोई कामना नहीं है ? तो ये मालती के विवाह के उपहार हो गए। [ऊपर को जाती है।]

पुरु—विचित्रे ! उतर आओ।

विचित्रा—नहीं महाराज, मैं हलकी पड़ गई। [जाने

लगती है।]

पुरु—विचित्रे, ठहरो।

विचित्रा—[ओझल हो जाती है।] मैं पृथ्वी और जल से ऊपर जा रही हूं।

पुरु—विचित्रे, मैं भी आता हूं। [उपर चढ़ जाता है।]

विचित्रा—[ओट से] तुम आकर क्या करोगे ?

पुरु—मेरे मन की तमाम कामनाओं को निकालकर तुम उसमें बुद्धिरूप से रहती हो ! तुम्हारे बिना—

विचित्रा—[ओट से] महाराज मैं जा रही हूं।

पुरु—तुम कहां जा रही हो ?

विचित्रा—मैं जहां से आई थी।

पुरु—मेरा भी हाथ पकड़ ले चलो।

विचित्रा—नहीं महाराज, तुम बहुत भारी हो।

पुरु—मैं तमाम कामनायें समाप्त कर हलका पड़ गया हूं।

विचित्रा—मेरे साथ जाना, यह भी तो एक कामना ही है।

पुरु—मैं इसे छोड़ दूंगा, विचित्रे !

विचित्रा—मेरे अंग गलने लग गये, तुम्हारी दी हुई, साड़ी नहीं ठहर सकती उसमें। मैं वायु तत्व में चली गई।

पुरु—विचित्रे !

विचित्रा—[ओट से साड़ी फेंकती है।] लो राजन् पहचानो, क्या यही नहीं है तुम्हारी विचित्रे !

पुरु—विचित्रा, यह बाहर का छिलका है।

विचित्रा—[ओट से] और तुम्हारा यौवन ?

पुरु—मैं इसे भी लौटा देने को तैयार हूँ। विचित्रे ! विचित्रे !!

[ओट में चला जाता है।]

विचित्रा—[ओट में दूर से] राजन् ? मैं तेज तत्व से होकर

ऊपर चली गई। अब मैं तुम्हें दिखाई भी न दे सकूंगी।

पुरु—[ओट से] विचित्रे ! तुम कहां छिप गईं ?

विचित्रा—[ओट में दूर से] नाद से भी ऊपर, अब तुम मुझे सुन भी न सकोगे। लौट जाओ महाराज।

ययाति—[ओट से] नहीं विचित्रे ! तुम हंसी कर रही हो। [खांसने लगता है।] हैं यह क्या यह मेरी खांसी फिर उभर आई और मेरी कमर का दर्द ! [फिर खांसता है।] ऽक्खू ! ऽक्खू ! ऽक्खू ! अब इस पहाड़ पर नहीं चढ़ सकता मैं। विचित्रे ! यह खड़ी तो हो तुम ! तुम्हारी साड़ी साफ-साफ दिखाई दे रही है। दौड़ कर पकड़ लूंगा तुम्हें। [दौड़ने की आवाजें।] नहीं एक भ्रम है यह। तुम्हारी साड़ी तो यह मेरे हाथ में है। फिर कहां हो तुम ? [खांसता हुआ दूर चला जाता है।]

मधुर पृष्ठ-संगीत

[मालती पूजा की थाली लिये हुए आती है। थाली मूर्ति के पास रखती है। कहीं किसी को न देख चकराती है। इधर-उधर दौड़कर पुकारती है— 'देवि ! देवि !" मधुर पृष्ठ संगीत कठोर रण-संगीत में बदल जाता है। नंगी तलवार हाथ में लिए ययाति के दोनों राजकुमार आ धमकते हैं। मालती डर कर सिमटती है।]

बड़ा राजकुमार—है ! इस गुफा में भी नहीं ! फिर कहां गया वह पाखण्डी !

छोटा राजकुमार—[मालती को दिखाकर] हैं ! यह कौन है ? [दोनों मालती की ओर बढ़ते हैं। मालती एक द्वार से बाहर को भाग जाना चाहती थी, उधर से शर्मिष्ठा के दोनों बेटे हाथों में नंगी तलवार लिये आ कूदते हैं। मालती उन चारों के बीच में घिर कर असहाय हो जाती है।

बड़ा राजकुमार—कौन है यह ?

छोटा राजकुमार—कौन है तू ?

मालती—(रोने लगती है।) नहीं मैं कोई नहीं हूँ।

बड़ा राजकुमार--कहां है वह पापी ? पुरु !

मालती—मैं नहीं जानती।

बड़ा राजकुमार- उधर उन कोठियों में तो नहीं है ?

बड़ा बेटा—नहीं, सब सूना पड़ा है।

मंझला बेटा--यह जानती हैं।

मालती—(हाथ जोड़कर) नहीं मुझे नहीं मालूम।

बड़ा राजकुमार—कौन है तू ?

मालती—एक किसान की बेटी।

छोटा राजकुमार- यहां क्यों आई ?

मालती—(रोती है।)

बड़ा राजकुमार—यह अवश्य जानती है। बता कहां है वह ?

मालती—भगवान् की सौगन्ध, मैं नहीं जानती।

छोटा राजकुमार—यह बड़ी चालाक औरत जान पड़ती है। जब तक इसकी मरम्मत नहीं की जायगी, यह बताने की नहीं।

बड़ा राजकुमार—बता कहां गया वह दुरात्मा ! हमारे पिता पर जादू चलाकर हमें कारागार में डलवा देने वाला !

छोटा राजकुमार—आज अब हमारे क्रोध से नहीं बच सकता वह।

बड़ा बेटा—तू सच-सच बता दे, तेरे ऊपर कोई आंच न आवेगी।

मंझला बेटा—तुझे पुरस्कार दिया जायगा।

बड़ा राजकुमार—यह ऐसे ही न बतावेगी। इसके हाथ-पैर बांध किसी पेड़ में उलटा लटका दो। अतर तब भी न बतावे तो नीचे से आग जलाकर मिर्च का धुवां दो।

[दोनों राजकुमार अपने कमरबंद खोलते हैं। चारों उसे पकड़ कर बांधते हैं। मालती रोती और चिल्लाती है। गुफा के ऊपर से विचित्रा की साड़ी को छाती से लगाए ययाति उतरता है, खांसते हुए।]

ययाति—हैं ! एक असहाय नारी के ऊपर यह कैसा बलात्कार मेरे आश्रम में !

सब—[चौंककर इधर-उधर देखते हैं।]

बड़ा राजकुमार—हैं ! यह तो महाराज हैं।

[ययाति उनके बीच में जाते हैं। सब अपनी अपनी तलवारें म्यान में रख उन्हें प्रणाम करते हैं। ययाति मालती के बंधन खोलते हैं।]

ययाति—इस निरुपाय किसान की कन्या ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है ?

बड़ा राजकुमार—महाराज, आप यहां कब आए ?

ययाति—मैं तो यहीं हूं। अपनी कहो, तुम्हें कारागार से किसने छुड़ा दिया ?

बड़ा राजकुमार—बुद्धि और बाहु के दोहरे बल ने महाराज।

ययाति—क्या पुरु को किसी तरह तुमने मना लिया ?

बड़ा राजकुमार—क्या वह चांडाल राजधानी में है ?

ययाति—क्या तुम राजधानी से नहीं आये हो ?

बड़ा राजकुमार—नहीं महाराज, हमने कारागार से भीतर-ही-भीतर दूर जंगल में सुरंग काट ली। हमारी लगन, शक्ति और वीरज को देखिए !

ययाति—इस निर्दोष नारी को बांध दिया तुमने। इस पाप का उत्तर कौन देगा ? [मालती को खोल देता है।]

मालती—[खड़ी होकर ययाति के पैर पड़ती है।] महाराज

की जय हो।

ययाति—सौभाग्यवती हो ओ बेटी। अब तुम्हारी मनोकामना शीघ्र ही पूरी हो जायगी। [झिड़ककर पुत्रों से] उत्तर क्यों नहीं देते ? इस नारी की पीड़ा का पाप किस पर है ?

[चारों डरकर चारों ओर से हाथ जोड़ते हैं।]

बड़ा राजकुमार—पुरु के ऊपर, हमारे बंधन का भी जो कारण है।

ययाति - नहीं यह तुम्हारा भ्रम है। पुरु बिल्कुल निर्दोष है।

बड़ा बेटा —महाराज, उस पर आप इतने क्यों प्रसन्न हो गए ?

ययाति—उसने मुझे अपना यौवन दे दिया, कितना बड़ा त्याग ? तुम सबसे मांगा था, हुआ था कोई भी तैयार ?

सब—[एक दूसरे का मुंह देखकर] क्या यह सच है ?

बड़ा राजकुमार—लेकिन आप तो और भी बूढ़े हो गए।

ययाति—यौवन एक ही वर्ष के लिए था, वह आज अभी समाप्त हो गया और मुझे अपनी जगह में लौट आना पड़ा।

बड़ा राजकुमार—पुरु क्या तब राजधानी में है ?

ययाति—हां, राजमुकुट देकर मैंने उसकी कमी पूरी की।

बड़ा राजकुमार—तो अपना राजमुकुट वापस ले लीजिए।

ययाति—नहीं, किस लिए ? माया के सपने को तोड़कर मैंने शाश्वत सत्य को पाया है। मैंने देखा और समझा है। कामनाएं ही मनुष्य के बंधन है उनको मन से मिटा डालना ही मुक्ति है।

बड़ा राजकुमार—ये बुढ़ापे के चिह्न हैं। हमें क्यों रोकते हैं आप ? वसुंधरा वीरों का भोग है। चलो वीरो। [चारों म्यान में से तलवारें निकालते हैं] मैं छीन लूंगा पुरु से राजमुकुट, उस पर मेरा अधिकार है।

छोटा राजकुमार—मैं भी तुम्हारी सहायता करूंगा।

बड़ा बेटा—मैं भी चलूंगा।

मंझला बेटा—मैं भी तो।

ययाति—नहीं इसकी कोई आवश्यकता नहीं। पुरु अवश्य ही यहां आकर वह राजमुकुट मुझे लौटा जावेगा, सबसे पहले वह आज्ञाकारी है। दूसरा वह भी अपनी जवानी में लौट गया होगा, तीसरा उसका राजतिलक हो कहां हुआ है ?

[चारों बेटे अपनी-अपनी तलवारें म्यान में रख लेते है। नेपथ्य में रथों के आने की गड़गड़ाहट होती है। रथ निकट आकर रुक जाते हैं। घोड़े हिनहिनाते हैं। सब उधर ही देखने लगते है।]

बड़ा राजकुमार—हैं ये तो हमारी माता देवयानी हैं।

बड़ा पुत्र—और हमारी माता शर्मिष्ठा भी तो आज कैसे दिव्य वेश में।

ययाति—लेकिन वह कहां है ?

बड़ा राजकुमार—और कहां है राजमुकुट ?

मालती—[अधीर होकर] महाराज ?

ययाति—धीरज रक्खो।

[गुरुदेव के पीछे देवयानी और शर्मिष्ठा आती हैं।]

गुरुदेव—[ययाति को दिखाकर] लो देखो—हैं न यहीं महाराज। हुआ विश्वास ?

देवयानी—[आंखें मलकर] महाराज का रथ तो हमसे बहुत पीछे था।

शर्मिष्ठा—इतने पहिले ये यहां किस मार्ग से आ गए।

गुरुदेव—मन्त्रयोग के मार्ग से। [दौड़कर इधर-उधर किसी को ढूंढता है।]

[दोनों राजकुमार देवयानी और दोनों बेटे शर्मिष्ठा को प्रणाम करते हैं।]

देवयानी—हैं ! हमारे ! पुत्र तुम लोग कब आए ?

बड़ा राजकुमार—आज ही तो ।

देवयानी—[शर्मिष्ठा को दिखाकर] यह भी तुम्हारी माता हैं। [देवयानी के पुत्र शर्मिष्ठा को और शर्मिष्ठा के पुत्र देवयानी

को प्रणाम करते हैं ।]

ययाति—गुरुदेव की जय हो ! क्या ढूंढ रहे हैं आप ? बुद्धि तो ठीक है अब आपकी ?

गुरुदेव—बुद्धि को ही तो ढूंढ रहा हूँ, कहां गई वह दिव्य ज्योति ?

ययाति—जहां से आई थी वहां चली गई। आप अपने स्वास्थ्य की बात कहिये ।

गुरुदेव—मैं तो बिल्कुल पागल हो गया था। राजकुमार पुरु ने मेरी औषधि कराकर मुझे अच्छा कर दिया ।

ययाति—इन सबको यहां आप ही लाये होंगे ?

गुरुदेव—हां महाराज, सबके संशय दूर करने आवश्यक थे ।

ययाति—लेकिन जिसे सबसे पहिले आना चाहिये था, वह अभी तक भी नहीं आया ।

मालती—[व्याकुल होकर मार्ग की ओर देखती हुई चली जाती है ।

गुरुदेव—आ रहे हैं पीछे । उन्हीं के आग्रह से तो हम सब आए हैं। राजकुमार पुरु ही ने तो मुझ से कहा कि ठीक वर्ष की समाप्ति पर वह आपका राजमुकुट लौटा देना चाहते हैं । मैंने पंचांग की सहायता से उस तिथि का ज्ञान प्राप्त किया। आठ दिन पहले हम लोग यहां के लिये चल पड़े थे। महारानियों पर भी यह रहस्य खोल दिया गया ।

ययाति—इनके विश्वास न करने पर ही वह सच्चाई ढक

दी गई थी। इस बार किया इन्होंने विश्वास ?

गुरुदेव—आप पीछे थे, यहां आ गये। यह चमत्कार देखकर फिर किसे न होगा विश्वास ?

शर्मिष्ठा—हृदय पर से बहुत बड़ा कांटा निकल गया। तभी तो मैं कहती थी, मेरा ऐसा विनम्र और चरित्रवान बेटा इतना दुःशील क्यों कर हो गया !

ययाति—प्रजा का विद्रोह कैसा है ?

गुरुदेव—सब शांति हो गई महाराज। दुष्टों को दंड दे दिया गया। अब चारों वर्ण ठीक-ठीक रीति से अपने धर्म का पालन करने लग गये।

देवयानी—हम दो सौतें तो एक हो गईं। सुना है, हमारी एक और सौत है यहां।

ययाति—हं-हं-हं ! वह वर्ष समाप्त होने पर चली गई। लेकिन पुरु कहां रह गया ?

बड़ा राजकुमार—चलो, हम ढूंढ लावें।

[चारों भाई जाते हैं।]

देवयानी—बूढ़े महाराज नए पुरु में बदल गए, इस आश्चर्य को देखने के लिए मैं भी क्यों न जाऊं ?

शर्मिष्ठा—हां बहन मैं भी उससे क्षमा मागूंगी।

[दोनों जाती हैं।]

ययाति- गुरुदेव, पिता के लिये महान् त्याग करने वाले पुत्र के स्वागत को क्या आगे न बढ़ना चाहिये ? [जाने लगता है। कुछ याद आकर इधर-उधर देखता है।] मालती ! तू कहां चली गई ? [पुकारता है।] मालती ! मालती !

गुरुदेव—[ययाति का हाथ पकड़कर ले जाते हैं।]

[मालती रोती हुई आती है। कामदेव की पट्टी खोल पूजा करना

चाहती थी कि द्वार पर किसी की आहट पाकर उधर जाती है ।]

पुरु—[आकर] मैं रास्ता भूल गया । महाराज ययाति क्या यहीं रहते हैं ?

मालती—[पुरु को पहचान उसका हाथ पकड़ लेती है ।] पहचाना मुझे ?

पुरु—क्यों नहीं ? तुम्हें भी धोखा न खाना चाहिये । [सिर से मुकुट उतार लेता है ।] यह राजमुकुट मेरा नहीं है ।

मालती—तुम जिसे चाहो, इसे लौटा सकते हो । मैं तो तुम्हें अपने यौवन में लौटना देख रही थी । अब यह यौवन तुम्हारा ही है न ?

पुरु—नहीं मालती, यह यौवन भी मेरा नहीं है, जवानी या राजमुकुट इन दोनों में से अगर किसी के लिए तुम मुझसे प्रेम करती हो तो धोखा खाती हो । नहीं, यह जवानी भी मेरी नहीं है । उसे महाराज के बुढ़ापे में बदलकर जो अनुभव मुझे हुआ है, उसने मेरा सारा संसार ही बदल दिया और महाराज का यह मुकुट—भारी बहुत भारी, मानो कांटों का एक भारी पर्वत, इसे लौटाने आया हूँ ।

मालती—तो क्या अपने शरीर में लौट कर तुम अपने वचन से भी लौट जाओगे ?

पुरु—यह क्या कहती हो मालती ? तुम्हें प्यार करूंगा पर अनुराग से नहीं वैराग्य से ।

ययाति—[नेपथ्य में पुकारता है ।] कहां हो पुरु ? राजकुमार पुरु, तुम कहां हो ?

पुरु—महाराज, मैं आपको ही खोज रहा हूँ ।

[उसी समय ययाति, उसके पीछे गुरुदेव फिर दोनों रानियां फिर चारों भाई आ जाते हैं । पुरु व्याकुल होकर महाराज ययाति के पैरों पर गिरकर उनका राजमुकुट उनके चरणों पर रखता है ।]

ययाति—जियो लाल।

पुरु—महाराज, यह धरोहर स्वीकार कीजिए।

ययाति—तुम जैसे निर्लोभ पुत्र को पाकर हम कृतार्थ हुए। [पुरु को छाती से लगाता है।]

पुरु—[दोनों माताओं को प्रणाम करता है।]

दोनों रानियां—चिरंजीवी होओ राजकुमार।

पुरु—[मालती से] सबको प्रणाम करो। यह आपकी पुत्र वधू है।

मालती—[दोनों माताओं को प्रणाम कर रुक जाती है।]

पुरु—[भाइयों को दिखाकर] इन्हें भी, ये सब मुझसे बड़े और तुम्हारे पूज्य हैं।

ययाति—नहीं मालती, ठहर जाओ। पहले ये चारों तुम्हारे पैर छूकर तुमसे क्षमा मांगेंगे, उसके बाद।

[चारों भाई मालती के पैर छूते हैं।]

देवयानी—क्यों ? क्यों ?

ययाति—फिर पूछ लेना। [मालती से] अब तुम इन्हें प्रणाम कर सकती हो।

मालती—[सबको प्रणाम करती है।]

देवयानी—[मालती के कंधे पर हाथ रखती है।] बड़े सुख का दिन है आज। अभी हम क्यों न राजधानी को लौट चलें।

ययाति—केवल मुझे छोड़कर। मैंने बुढ़ापे में फिर यौवन को पुकारा। उसने लौटकर मेरे कानों में जो कुछ कहा, वह सत्य बहुत गहरा मेरे मन में गड़ गया। [सबसे बड़े राजकुमार के सिर में राजमुकुट पहना देता है।] तुम मेरे सबसे बड़े पुत्र हो। यह राजमुकुट तुम्हारा ही है। अपने चारों भाइयों की मदद से प्रजा का पालन करो। [रानियों से] तुम अपनी एकता से पुत्रों की रक्षा करना।

दोनों रानियां—हम कहां जायें ? पति को छोड़ और नारी

की शरण कहा है ?

ययाति—पति शरण हो सकता है । लेकिन पुत्रों का संरक्षण भी तो उसे करना है । शरण जाने से संरक्षण अधिक पुण्यमय है। गुरुदेव ! जिस प्रकार आप इन्हें यहां लाए हैं, उसी तरह ले भी जाइए।

गुरुदेव—तथास्तु, चलो ।

पुरु—महाराज, आपने वर्णों को शुद्ध करने के लिए क्षत्रिय को किसान बनने की आज्ञा दी थी। आपके वंश में मैं किसान बनूंगा। मैंने राज-सुख पा लिया ।

ययाति—तुम धन्य हो पुरु ।

मालती—[कामदेव की आंखों पर बंधी पट्टी खोल देती है ।]

ययाति—मालती, मैं भी यही सोच रहा था । तुम्हारे इस देवता को अंधा न होना चाहिये । ये कामनाओं के राजा हैं। आज मेरी तमाम कामनाएं समाप्त हुईं ।

पुरु—प्रजा की रक्षा के लिए चारो भाई खड्ग हाथ में लेकर राजधानी को जा रहे हैं, प्रजा का आधार अन्न का दाना है, हम उसको उपजावेंगे। मालती ! चलो दिखाओ, खेतों की राह किधर है ।

पृष्ठ-संगीत

[गुरुदेव, उनके पीछे बड़ा राजकुमार, फिर तीनों रानियां एक ओर को जाती है। दूसरी ओर मालती हाथ पकड़कर पुरु को ले जाती है।]

ययाति—[आकाश की तरफ हाथ जोड़] आशीर्वाद दो भगवन्, विश्व मे शांति हो, मानव का कल्याण हो ।

यवनिका

नवरत्न प्रेस, मेरठ

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No.....

कृपया इस पुस्तक को निम्नलिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

H
891.432
पंत

अवाप्ति सं० ~~16230~~
ACC. No.....

वर्ग सं.
Class No.....

पुस्तक सं.
Book No.....

लेखक
Author पंत, गोविन्द वल्लभ

शीर्षक
Title ययाति ।

H
891.432
पंत

LIBRARY ~~16230~~

LAL BAHADUR SHASTRI

National Academy of Administration

MUSSOORIE

Accession No. 124195

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving